ISSN-0971-8397

योजना

अक्तूबर 2010 | विकास को समर्पित मासिक | मूल्य : 10 रुपये

खाद्य सुरक्षा

सबके लिए सतत खाद्य सुरक्षा

● एम.एस. स्वामीनाथन

हम गोदामों के निर्माण पर पूंजी निवेश नहीं कर रहे हैं, जिससे अनाज सड़ जाता है। यह प्राथमिकता के निर्धारण में हमारी चूक है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम बनाकर उसे लोगों को कानूनी अधिकार दिलाने के लिए तभी लागू किया जा सकता है, जब हम अनाज और अन्य जल्द ख़राब होने वाली जिन्सों के सुरक्षित गोदाम बनाने पर ध्यान दें। फलों, सब्ज़ियों और दूध जैसे जिन्सों के संरक्षण को भी प्राथमिकता दिए जाने की ज़रूरत है

सबके लिए खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना वर्ष 1947 से ही राष्ट्रीय लक्ष्य रहा है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस लक्ष्य की चर्चा यह कहकर की थी कि और सभी इंतजार कर सकते हैं, लेकिन खेती नहीं। खाद्य सुरक्षा अब आर्थिक और सामाजिक रूप से संतुलित आहार प्राप्त कर सकने, पेयजल की उपलब्धता, पर्यावरण की सफ़ाई और प्रारंभिक स्वास्थ्यचर्या के रूप परिभाषित की जाती है। दुर्भाग्य की बात है कि अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद हमारे देश में व्यापक रूप से कुपोषण फैला है। बच्चे और महिलाएं इससे सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं। हमने उद्योगों और आर्थिक विकास दर के मामले में चाहे जितनी भी प्रगति कर ली हो, लेकिन भूख मिटाने और कुपोषण के मामले में हमारी ख्याति अच्छी नहीं है। पिछले दशक में आधारभूत मानवीय आवश्यकताओं पर ज़ोर होता था, जो अब अधिकारों पर आ गया है। इस प्रकार से अब संसद द्वारा पारित कानूनों के जरिये हमें शिक्षा, सूचना और रोज़गार क्षेत्रों में अधिकार मिले हुए हैं। इस समय राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक विकसित करने की कवायद चल रही है, जिसके ज़रिये हर भारतीय नागरिक को भोजन पाने का अधिकार मिल जाएगा।

सतत खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए हमें इस समस्या के तीन पक्षों पर एक साथ विचार करने की ज़रूरत है। ये हैं :

- भोजन की उपलब्धता, जो उत्पादन का काम है। जब बिल्कुल ज़रूरी हो जाए, आयात किया जाए।
- भोजन तक पहुंच, जो क्रय शक्ति और रोज़गार का काम है।
- शरीर भोजन को पचा कर सके, इसके लिए स्वच्छ पेयजल, साफ़-सफ़ाई और स्वास्थ्यचर्या की सुविधाएं जुटानी होंगी।

इस प्रकार से खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए खाद्य और गैर खाद्य कारकों को ध्यान में रखते हुए समन्वित दृष्टिकोण अपनाना होगा। सौभाग्य की बात है कि हमारी अनेक योजनाएं चल रहीं हैं, जो इन मुद्दों का समाधान जुटाती हैं। राजीव गांधी पेयजल मिशन, समग्र सफ़ाई कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ऐसी योजनाएं हैं जो यह सुनिश्चित कर सकती हैं कि जो भी भोजन खाया जाए, वह शरीर को शक्ति दे। अनेक रोज़गार जुटाने वाली योजनाएं चल रहीं हैं, जिनमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम शामिल है। ये योजनाएं ग़रीबों को न्यूनतम ज़रूरी क्रय शक्ति उपलब्ध कराती हैं। अनाज उपलब्ध कराने की क्षमता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने होंगे :

- राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, जिसके लिए 25,000 रुपये करोड़ का परिव्यय होगा।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन जिसके लिए 6,000 करोड़ रुपये का परिव्यय आवश्यक है।
- राष्ट्रीय बागवानी मिशन जिसके लिए 10,363.46 करोड़ रुपये का दावा किया गया है।

कई अन्य ऐसी योजनाएं भी हैं जो उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हुई हैं। उदाहरण के लिए मिट्टी स्वास्थ्यचर्या, फ़सल सुरक्षा और सिंचाई। इनके बावजूद हमारा कृषि क्षेत्र बहुत हद तक बारिश पर निर्भर है। उदाहरण के लिए वर्ष 2009 के दौरान व्यापक सूखा पड़ा, जिससे कृषि विकास दर में -0.2 प्रतिशत गिरावट आ गई। पहले विकास दर का लक्ष्य 4 प्रतिशत रखा गया था। हमारे देश के सामने 1.2 अरब लोगों के लिए भोजन पैदा करने की भी चुनौती है। साथ ही, लगभग 1 अरब पालतू पशुओं के लिए चारा भी जुटाना है। हमारी लगभग 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है और उनकी जीविका का प्रमुख साधन फ़सलें उगाना, पशु पालन, मछली पालन, कृषि वानिकी, खेती आधारित उद्योग आदि हैं। इसीलिए हमारे देश में खेती खाद्यान्न उत्पादन का साधन ही नहीं बल्कि अधिकांश जनसंख्या के लिए जीविका का साधन भी है। यही कारण है कि हमें अपने ही उपजाए हुए अनाज के आधार पर खाद्य सुरक्षा विकसित करने की ज़रूरत है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए अनाज आयात करने के वही कुप्रभाव होंगे जो बेरोज़गारी आयात करने से हो सकते हैं और इसके कारण कृषि संबंधी हमारी मुश्किलें और बढ़ जाएंगी।

दुनिया को चाहिए खाद्य सुरक्षा

● रहीस सिंह

वाशिंगटन आमराय के बाद से दुनिया को न केवल पूंजीवाद की ओर धकेला गया बल्कि उसका इस ढंग से प्रचार किया गया कि यही वह विकल्प है जो लोगों को महत्तम भौतिक कल्याण उपलब्ध करा सकती है। इससे संबंधित आंकड़े कुछ इस तरह से पेश किए गए कि वे एक सामान्य ज्ञान और बुद्धि वाले व्यक्ति को ही नहीं बल्कि ख़ासे बुद्धिमानों को भी भ्रम में डाल सकते थे। इसने थॉमस एल. फ्रीडमैन के उस सिद्धांत को समतल भूमि पर खूब फैलाया जिसमें यह विचार निहित था कि विश्व उनके (अमरीका के) नेतृत्व में रहे और लोकतांत्रिक तथा पूंजीवादी बने, प्रत्येक होठ पर पेप्सी हो और प्रत्येक कंप्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट विंडो हो। इससे भी आगे बढ़कर लोकतंत्र को पूंजीवाद का पूरक बताया गया जबकि लोकतंत्र का तात्पर्य बेलगाम निजीकरण, विनियमीकरण, सीमा पर वस्तुओं और पूंजी का मुक्त आवागमन नहीं हो सकता है और न ही जींस, कोक, पिज्जा और कंप्यूटर के माध्यम से लोकतंत्र की प्राप्ति हो सकती है। जो भी हो इसके बाद आधुनिक व्यवस्थाएं, मसलन बाज़ार और पूंजीवाद तथा उससे जुड़ीं मान्यताएं खूब फली-फूलीं लेकिन इसने आम आदमी को भूख, कुपोषण और ग़रीबी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिया। अगर ऐसा न होता तो संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून स्वयं यह स्वीकार नहीं करते कि दुनिया में प्रत्येक पांच सेकेंड में एक बच्चा भूख से दम तोड़ देता है और 1 करोड़ से भी अधिक लोगों के लिए भोजन उपलब्ध नहीं है। हम विकास के उस पायदान पर पहुंच गए हैं जहां सरकारों पर यह दबाव पड़ने लगा है कि वे भोजन का अधिकार कानून बनाकर लोगों के लिए भोजन सुनिश्चित कराएं। इस स्थिति में वास्तव में संशय की स्थिति बनी हुई है कि वास्तव में इसे क्या माना जाए?

अभी कुछ समय पहले ही रोम में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बान की मून ने स्वयं स्वीकार किया कि आज 6 लाख बच्चे प्रतिवर्ष भूख से मर रहे हैं। प्रतिदिन के हिसाब से यह संख्या क़रीब 17,000 ठहरती है। अब सवाल यह उठता है कि कार्नेगी एडाउमेंट जैसी रिपोर्ट में वर्ष 2050 की जो तस्वीर पेश की जाती है वह बाज़ार की दृष्टि से चाहे जितनी रंगीन और खुशनुमा हो लेकिन असल में उसका चरित्र नैतिक नहीं है क्योंकि उस समय तक दुनिया में भूखे लोगों की संख्या कम-से-कम दो करोड़ और बढ़ जाएगी। एक प्रश्न यह भी है कि आज भोजन का अधिकार संबंधी कानून की मांग दुनियाभर में हो रही है तो उस समय की स्थिति क्या होगी? भारत भी इससे अछूता नहीं है बल्कि भारत की हक़ीक़त तो और भी पीड़ादायक लगती है। हक़ीक़त यह है कि भारत में भुखमरी और कुपोषण का संकट दक्षिण अफ्रीका के देशों की तुलना में कहीं ज्यादा है (देखें तालिका-1)। भारत का हर दूसरा बच्चा कुपोषित (यूनिसेफ़ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर दिन 5,000 बच्चे कुपोषण के शिकार होते हैं) और हर दूसरी महिला खून की कमी से पीड़ित है। कृत्रिम विधियों से एकत्रित किए गए आंकड़े तो बताते हैं कि हमने तेज़ रफ़्तार से विकास किया है लेकिन इस विकास ने हमारे आम आदमी या गांधीजी के 'अंतिम पंक्ति के अंतिम व्यक्ति' की ज़िंदगी में कोई परिवर्तन नहीं किया। संयुक्त राष्ट्र संघ की अनुषंगी संस्था खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की हालिया रिपोर्ट बताती है कि भारत में 23 क़रोड़ से अधिक लोग भूख के शिकार हैं। इस तस्वीर को देखकर कभी-कभी यह लगने लगता है कि जिस देश में 23 से 24 करोड़ लोगों को बिना कुछ खाए या थोड़ा-बहुत खाकर गुज़ारा करना पड़ता हो वह दुनिया की अर्थव्यवस्था का नेतृत्व करने का स्वप्न किस आधार पर देखता है? और तो और हमारे मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, छत्तीसगढ़ जैसे कुछ राज्यों की हालत अफ्रीका के इथियोपिया, कांगो और चाड जैसी है। यहां एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि भारत में प्रत्येक समस्या को अलग-अलग समझा और देखा जाता है (यही स्थिति अन्य विकासशील और अल्पविकसित देशों की भी है), जबकि ये समस्याएं आपस में काफ़ी गहरे जुड़ी होती हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और नोबेल पुरस्कार विजेता अर्मत्य सेन कहते हैं कि ग़रीबी और भुखमरी को जोड़कर देखना चाहिए। संकट यह नहीं है कि देश में अनाज़ का संकट है या उत्पादन अचानक न्यूनतम स्तर पर आ गया है। असली संकट यह है कि लोगों के पास पैसा नहीं है कि वे अनाज़ खरीद सकें। ग़रीबी और भुखमरी का आपस में जुड़ा हुआ एक अर्थशास्त्र और भी है।

तालिका-1

भूख पर वैश्विक स्थिति

देश/क्षेत्र	संख्या
विकासशील देश	832 लाख
विकसित देश	16 लाख
भारत	**231 लाख**
उत्तरी अफ्रीका	33 लाख
लातिनी अमरीका और कैरेबियाई देश	45 लाख
चीन	123 लाख
एशिया और प्रशांत (भारत और चीन को छोड़कर)	189 लाख
सब-सहारा अफ्रीका	212 लाख

स्रोत : खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट, 2009

भूख का पसरता बाज़ार

● नीलू अरुण

दुनिया में भूख से पीड़ित लोगों की संख्या में फिर वृद्धि होनी शुरू हो गई है। ग़रीब देशों में लाखों लोग खाद्यान्न ख़रीद पाने की स्थिति में नहीं हैं। इन लोगों को अब खाद्यान्न उपलब्ध कराने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं से भी अतिरिक्त मदद की उम्मीद नहीं है क्योंकि ये अंतरराष्ट्रीय खाद्य संस्थाएं भी संकट में हैं। विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यूएफपी) के निदेशक जोसेटी शीरान की मानें तो डब्ल्यूएफपी को वर्ष 2009-10 में 3 करोड़ डॉलर की अतिरिक्त आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति नहीं हो पाई थी। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2007 के बाद से खाद्य मूल्यों में 40 से 55 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और भूख से पीड़ित लोगों की संख्या भी बढ़ी है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार इन दिनों दुनिया के 37 देश अंतरराष्ट्रीय खाद्य सहायता पर निर्भर हैं।

एफएओ के महानिदेशक जैक्स डायफ ने आशंका व्यक्त की है कि खाद्यान्न उत्पादन में आ रही कमी एवं बढ़ते मूल्य से खाद्य संकट और गहराएगा तथा कई देशों में भोजन के लिए संघर्ष और हिंसा बढ़ सकती है। डायफ के अनुसार इस वक़्त दुनिया में अनाज का भंडार बेहद कम है। उन्होंने यह भी कहा कि कैमरून, मिस्र, हैती, बुर्कीनाफासो तथा सेनेगल जैसे देशों में ज़ारी खाद्य संघर्ष दुनिया के अन्य देशों में भी फैल सकते हैं।

बढ़ते खाद्य संकट के लिए खाद्य मूल्यों में हुई बेतहाशा वृद्धि को भी मुख्य कारण बताया जा रहा है। खाद्य मूल्यों में हुई वृद्धि के लिए विशेषज्ञ अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में मांस की मांग में वृद्धि को एक बड़ा कारण मान रहे हैं। कहा जा रहा है कि विगत दो दशक में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मांस की मांग दोगुनी हो गई है। ज़ाहिर है कि इसी अनुपात में चारा उत्पादन का दायरा भी बढ़ा है। एक आकलन के अनुसार एक किलो सूअर के मांस के लिए 3 किलो चारा चाहिए। इन मांगों की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में सोयाबीन व अन्य फ़सलों का उत्पादन किया जा रहा है। अनाज की जगह चारे के उत्पादन का परिणाम है कि कई देशों में खाद्यान्न की कमी होने लगी है।

भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08 कहता है कि 1990 से वर्ष 2007 तक खाद्यान्न उत्पादन वृद्धिदर 1.2 प्रतिशत ही रही है। इस दौरान जनसंख्या की औसत 1.9 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन की दर कम ही है। इस दौरान उत्पादन कम होने से प्रति व्यक्ति अनाज तथा दालों की उपलब्धता भी घटी है। अनाजों की ख़पत वर्ष 1990-91 में जहां प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 468 ग्राम थी वहीं वर्ष 2005-06 में घटकर यह प्रतिदिन 412 ग्राम प्रति व्यक्ति रह गई है। इस दौरान दालों की खपत प्रतिदिन 42 ग्राम प्रतिव्यक्ति से घटकर 33 ग्राम रह गई। यहां ध्यान देने की बात है कि 1956-57 में प्रतिव्यक्ति दालों की उपलब्धता 72 ग्राम थी।

1983-85 में अनाज उत्पादन की जो स्थिति थी उसमें अखाद्य फ़सलों की हिस्सेदारी लगभग 37 प्रतिशत थी जो वर्ष 2006-07 में बढ़कर 46.7 प्रतिशत तक पहुंच गई। आंकड़ों के अनुसार खाद्य फ़सलों के उत्पादन में जहां 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं अखाद्य फ़सलों का उत्पादन 4 प्रतिशत तक गया है। विश्व बैंक की ही रिपोर्ट मानती है कि महंगे क़ीमत वाले फ़सलों की मांग बढ़ी है जबकि भोजन के लिए ज़रूरी फ़सलों का उत्पादन घटा है। सरकार भी खाद्य फ़सलों की तुलना में अखाद्य फ़सलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए ज्यादा प्रोत्साहित करती है।

भूख को बाज़ार ने मुनाफ़े के धंधे के रूप में परिवर्तित कर लिया है। अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं स्वास्थ्य व पोषण की कमी का वास्ता देकर ऐसी नीतियां और कार्यक्रम थोप रहे हैं जिससे खाद्य उद्योग में लगी बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सीधे फ़ायदा पहुंच रहा है। अब भारत सहित दुनियाभर में नागरिकों के स्वास्थ्य और पोषण संबंधी अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक निज़ी भागीदारी (पीपीपी) को इस तरह से पेश किया जा रहा है मानो देश में लोगों का स्वास्थ्य इसी बुनियाद पर खड़ा किया जा सकता है अन्यथा भारत बीमारियों व कुपोषण के दलदल में धंस जाएगा।

वर्ष 2005 में विश्व स्वास्थ्य सभा (डब्ल्यूएचए) में स्तनपान के सवाल पर हुई बहस के दौरान भारत ने अपना पक्ष रखते हुए कहा था, "व्यावसायिक संगठनों की मुख्य प्राथमिकता लाभ कमाना है। इसलिए व्यावसायिक संगठनों से ऐसी अपेक्षा रखना न तो उचित है और न ही व्यावहारिक कि वे स्तनपान को संरक्षण, प्रोत्साहन और समर्थन देने के लिए सरकारों व अन्य समूहों के साथ मिलकर काम करेंगे।" तब डब्ल्यूएचए ने प्रस्ताव क्रमांक 58.32 को स्वीकार करते हुए सदस्य समूहों से आग्रह किया था कि वे यह सुनिश्चित करें कि शिशुओं व छोटे बच्चों के स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रमों व कार्यकर्ताओं के लिए वित्तीय समर्थन व अन्य प्रोत्साहन में किसी प्रकार से हितों के बीच टकराव न हो। मई 1981 में भी 34वीं विश्व स्वास्थ्य सभा में स्तनपान के विकल्पों के विपणन संबंधी अंतरराष्ट्रीय कोड को स्वीकारते हुए माना गया था कि लाभोन्मुखी व्यावसायिक संस्थान समतामूलक विकास के पैरोकार नहीं बन सकते। इन दिशानिर्देशों में नागरिक समाज और यूनिसेफ एवं डब्ल्यूएचओ जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों से उम्मीद की गई थी कि वह महज़ लाभ के लिए सक्रिय उद्योगों से अच्छी तरह निपटेगा लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उल्टे कथित पोषण एवं विटामिनों का घंधा करने वाली कंपनियों की तो चांदी हो गई और भ्रामक विज्ञापनों का सहारा लेकर नेस्ले, हिंदुस्तान लिवर और ऐसी ही अन्य बेबी फूड बनाने वाली कंपनियों ने खूब मुनाफ़ा कमाया।

ग़रीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा

● नवीन पंत

अगर विकास दर बढ़ने से ग़रीबों को कोई लाभ नहीं होता तो इस तरह का विकास निरर्थक है

देश के योजनाबद्ध विकास में प्रारंभ से ही ग़रीब वर्गों के कल्याण को प्राथमिकता देने करने की बात कही गई है। लेकिन इस दौरान देश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर नहीं था। वह खाद्यान्नों की कमी से जूझ रहा था। अत: चाहते हुए भी ग़रीबों को खाद्य सुरक्षा देने के संबंध में विशेष कुछ नहीं किया गया। सत्तर के दशक में देश खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर हो गया लेकिन खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर होने और कभी-कभी खाद्यान्नों का निर्यात करने के बावजूद समाज के सबसे कमज़ोर वर्गों को खाद्य सुरक्षा प्रदान नहीं की गई।

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में देश में 22 करोड़ से अधिक लोग कुपोषण के शिकार थे। ग्रामीण क्षेत्रों के पांच वर्ष से कम उम्र के लगभग आधे बच्चों का पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण समुचित विकास नहीं हो रहा था। औरतों, विशेष रूप से गर्भवती औरतों और जच्चा-बच्चा की स्थिति ख़राब थी।

भूख, ग़रीबी, कुपोषण और रोज़गार का एक-दूसरे से गहरा संबंध है। 2004-05 में देश की 1.9 प्रतिशत जनसंख्या भूख की समस्या से पीड़ित थी। जनसंख्या के चौथाई भाग से अधिक लोग ग़रीबी रेखा के नीचे जीवन बिता रहे थे। तीन वर्ष से कम उम्र के 45.9 प्रतिशत बच्चे कुपोषण और वजन की कमी से पीड़ित थे। भूख की समस्या मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और असम के कुछ इलाक़ों में थी। इस समस्या को उचित दर की दुकानों में खाद्यान्न उपलब्ध कराकर हल करने का प्रयास किया जा रहा था। यह प्रयोग विफल हुआ यद्यपि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को नया नाम देकर और लक्ष्य क्षेत्रों पर विशेष ध्यान केंद्रित कर उसमें सुधार लाने का प्रयास किया गया। जिन क्षेत्रों में यह योजना लागू थी वहां ग़रीबों के लिए सब्सिडी बढ़ा दी गई। लेकिन इसके बावजूद स्थिति में सुधार नहीं आया। यह पाया गया कि योजना का लाभ ग़रीबों को न देकर संपन्न लोगों को दिया जा रहा है। उचित दर की दुकानों की कमी है, खाद्यान्नों की बड़े पैमाने पर अनधिकृत बिक्री होती है। अत: संबंधित क्षेत्रों में खाद्यान्नों के मूल्य स्थिर करने और ग़रीबों को राहत देने का प्रयास विफल हो गया।

नब्बे के दशक में आर्थिक सुधारों के बाद उदारीकरण और बाज़ार अर्थव्यवस्था में विकास दर अथवा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। लेकिन ग़रीबों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। यह स्थिति चिंताजनक और असह्य थी। अत: नोबेल पुरस्कार विजेता और प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने कहा कि अगर विकास दर बढ़ने से ग़रीबों को कोई लाभ नहीं होता तो इस तरह का विकास निरर्थक है। उन्होंने देश के नेताओं को सलाह दी कि उन्हें अपना ध्यान इस ओर लगाना चाहिए कि विकास के परिणामस्वरूप देश के ग़रीबों के जीवन में सुधार आए। अगर ऐसा नहीं होता तो ऐसा विकास बेकार है। राज्य का पहला कर्तव्य न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करना है।

इधर पिछले कुछ वर्षों के दौरान इस स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार की ओर से कई क़दम उठाए गए हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भ्रष्टाचार से मुक्त करने और कुशल बनाने का प्रयास किया गया है। ग्रामीणों की क्रय शक्ति बढ़ाने और उनके कल्याण के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना सहित कई योजनाएं शुरू की गई हैं। बच्चों को पौष्टिक आहार देने के लिए स्कूलों में दोपहर का भोजन देने की व्यवस्था की गई है। शिशु और प्रसूति कल्याण केंद्रों और स्वास्थ्य केंद्रों में जच्चा-बच्चा और अन्य बच्चों को पौष्टिक तत्व देने की व्यवस्था की गई है। तथापि, आदिवासी क्षेत्रों, शहरी झोपड़पट्टियों और कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी स्थिति संतोषजनक नहीं है। कुछ क्षेत्रों में भूमिहीन किसानों, दलितों और आदिवासियों की स्थिति अभी भी दयनीय है। उन्हें लाभप्रद रोज़गार नहीं मिलता, समय पर मज़दूरी नहीं मिलती और पर्याप्त और पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। इन परिवारों के प्रतिव्यक्ति भोजन में 1600-1700 कैलोरी मिलती है, जो निर्धारित मानक 2400 से काफ़ी कम है। उनके परिवारों में औरतों और बच्चों की स्थिति तो और भी ख़राब है। इस कारण वे तरह-तरह की बीमारियों के शिकार होते हैं और अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

देश में ग़रीबी कितनी है यह हमेशा विवाद का विषय रहा है। प्रारंभ में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों का आकलन भोजन में कैलोरी की मात्रा से किया जाता था। 1973-74 के मूल्यों पर भोजन में ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी से कम प्राप्त करने वाले लोग ग़रीबी की रेखा से नीचे समझे जाते थे। इसे ध्यान में रखकर आय का हिसाब लगाया जाता था। मुद्रास्फीति को देखते हुए समय-समय पर इसमें बढ़ोतरी की जाती थी। कुछ अर्थशास्त्री एक डॉलर रोज़ से कम आय वाले व्यक्ति को ग़रीबी की रेखा से नीचे मानते थे। बाद में यह राशि 1.25 डॉलर कर दी गई।

सार्वजनिक वितरण व्यवस्था
जरूरत पुनर्गठन की

● संदीप दास

प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत जहां देश के ग़रीब परिवारों के बीच वितरित किए जाने वाले अनाज को लेकर काफी हो-हल्ला मचाया जा रहा है, वहीं झारखंड के दुमका जिले के एक छोटे किसान राजू मरांडी इस बात को लेकर खुश हैं कि कम बारिश के कारण फ़सल ख़राब होने के बावजूद वह अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकेंगे, क्योंकि उन्हें लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) के तहत काफी मात्रा में अनाज और ज़रूरी चीज़ें सस्ती दरों पर मिल जाएंगी।

इसी तरह आंध्र प्रदेश के रंगारेड्डी जिले के छोटे किसान पवन कुमार को खुशी है कि इस वर्ष अच्छी वर्षा के कारण उनकी ख़रीफ की फ़सल अच्छी होने के आसार हैं, जिसे बेचकर वह अतिरिक्त धन कमा सकेंगे, क्योंकि उनके परिवार के सभी सात सदस्यों के लिए ज़रूरी मात्रा में अनाज टीपीडीएस से मिल जाएगा।

मरांडी और कुमार देश के उन 6.52 करोड़ परिवारों में से हैं जो ग़रीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) वर्ग में पंजीकृत हैं। इसी वर्ग में 2.43 करोड़ अंत्योदय अन्न योजना के परिवारों (ग़रीबों में सबसे ग़रीब) को शामिल किया गया है, जिनकी हर महीने टीपीडीएस के तहत 35 किलो खाद्यान्न पाने की पात्रता है। खाद्यान्नों में चावल, गेहूं, मोटे अनाज और चीनी शामिल हैं। सरकार की तरफ से ग़रीब परिवारों को 5.65 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से चावल दिया जाता है, जबकि गेहूं का विक्रय मूल्य 4.15 रुपये प्रति किलोग्राम है। इस विशाल कार्यक्रम के संचालन के लिए सरकार हर साल 58,000 करोड़ रुपये ख़र्च करती है। इसे खाद्य सब्सिडी कहा गया है। टीपीडीएस के अंतर्गत राज्यों को 2.5 करोड़ टन अनाज आपूर्ति की जाती है।

उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी के अनुसार यह महसूस किया गया है कि उचित दर दुकानदारों की मिलीभगत से काफी बड़ी मात्रा में इस योजना का अनाज खुले बाज़ार में पहुंच जाता है। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था पूरे देश में लागू है। 1992 में सरकार ने सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को अधिक लक्ष्योन्मुख करके ग़रीब परिवारों को लाभान्वित करने का फ़ैसला किया था। जून 1992 में सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त बनाया गया और दूर-दराज़, पहाड़ी और दुर्गम इलाक़ों में इसके ज़रिये पहुंच बनाई गई जहां ग़रीबों का बहुलांश रहता है। बाद में जून 1997 में सरकार ने टीपीडीएस योजना शुरू की जिसका सारा ज़ोर ग़रीबों पर है।

लेकिन पिछले दशक से ही केंद्र और राज्यों की सरकारें 5 लाख से ज्यादा संख्या वाली इन उचित दर दुकानों को कुशलतापूर्वक संचालित करने की समस्या से जूझ रही हैं। इन दुकानों का उद्देश्य टीपीडीएस के अंतर्गत ग़रीबों को खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। संसदीय और उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय की अनेक अध्ययन समितियों ने इस बात की पुष्टि की है कि ऐसी कई घटनाएं सामने आई हैं जब सुपुर्दगी व्यवस्था में गोलमाल के लक्षण दिखाई दिए जिनके परिणामस्वरूप अनाज उन लाभार्थियों तक नहीं पहुंचा, जहां इसे पहुंचना था। कई राज्य सरकारों ने स्मार्ट कार्ड, बायोमीट्रिक अंगूठे के निशान आदि सहित अनेक उपाए किए, जिनसे टीपीडीएस में अनाज का गोलमाल रोका जा सके।

खाद्य सब्सिडी बिल साल-दर-साल बढ़ता जा रहा है, जिसे देखते हुए उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय और राज्य सरकारों द्वारा मौजूदा टीपीडीएस को पूरी तरह पुनर्गठित करके चुस्त-दुरुस्त बनाने की ज़रूरत महसूस की जा रही है।

पिछले तीन वर्षों के दौरान दी गई खाद्य सब्सिडी के विवरण नीचे दिए जा रहे हैं :

तालिका-1

वर्ष	जारी सब्सिडी (रुपये/करोड़)
2007-08	31259.68
2008-09	43668.08
2009-10	58242.45

स्रोत : *उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय*

कृषि राज्य मंत्री के.वी. थॉमस के अनुसार राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के खाद्य सचिवों ने खाद्य कूपन जारी करने के उपाय शुरू करने का फ़ैसला किया है। अन्य उपायों में यह भी सुझाव दिया गया कि टीपीडीएस का कंप्यूटरीकरण किया जाए जिसके आधार पर सूचना प्रौद्योगिकी आधारित उपाय किए जाएं और व्यवस्था को सुदृढ़ और चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिए अनाज की स्मार्ट कार्ड आधारित व्यवस्था शुरू की जाए।

साथ ही, आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने टीपीडीएस के तहत चावल और मिट्टी के तेल के बार-कोडेड कूपन जारी किए हैं, जिनका उद्देश्य यह है कि उचित दर दुकानदार इन ज़रूरी जिन्सों की वितरण बहियों में झूठी प्रविष्टियां न कर सकें। अरुणाचल प्रदेश के तिरप जिले में अग्रगामी योजना के तौर पर कूपन व्यवस्था शुरू की गई है। इसके तहत राशन कार्ड जारी या नया करते समय ही लाभार्थियों को कूपन दे दिए जाते हैं। दुकानदारों को अगले महीने का आवंटन प्रस्तुत कूपनों के आधार पर मिलता है।

जम्मू-कश्मीर ने दो वर्षों के लिए एक पुस्तिका के रूप में राशन कार्ड जारी किए हैं जिसमें 24 कूपन हैं। उधर बिहार सरकार अपने बीपीएल परिवारों के लिए हर महीने कूपन जारी करती है और राशन का वितरण इन्हीं कूपनों के आधार पर किया जाता है।

अनाज खरीद और मूल्यांकन नीतियां

● मदन सबनवीस

न्यूनतम समर्थन मूल्य, ख़रीद और वितरण ये तीनों सरकारी नीतियों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि इस दिशा में आलोचकों की तल्ख़ी के बावजूद सराहनीय प्रगति हुई है और इसका क्षेत्र विस्तृत होता गया है। अगर हम यह मान लें कि हमारी जनशक्ति का एक बड़ा हिस्सा खेती में लगा हुआ है, जहां खास किस्म की ग़रीबी मौजूद है, तो भी इस दिशा में सरकार का समर्थन एकदम ज़रूरी है। उक्त तीनों नीतियां खास उद्देश्यों को लेकर बनाई गई हैं। भले ही प्रक्रिया में उनके कार्यान्वयन से कुछ ऐसे नतीज़े दिखाई दिए हैं, जिन्हें देखने की कोई मंशा नहीं थी और जो बाकी अर्थव्यवस्था पर असर डालते हैं। यही कारण है कि इन नीतियों में संशोधन की ज़रूरत है।

इन तीनों नीतियों पर एक-एक करके विचार करना होगा। न्यूनतम समर्थन मूल्य कार्यक्रम का उद्देश्य है अनाज उत्पादकों को उनकी उपज का लाभप्रद मूल्य दिलाना। न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने का वैज्ञानिक आधार है और इसकी जानकारी पाने के लिए पैदावार की लागत, रहन-सहन का ख़र्च और मूल्य समता आदि को ध्यान में रखना होगा। इससे किसान को यह भरोसा दिलाया जाता है कि फ़सल काटने के समय ही उसे न्यूनतम क़ीमत पाने का आश्वासन है और इसी के भरोसे वह अपनी पसंद की फ़सलें उगा सकता है। किसान को विभिन्न विकल्पों को ध्यान में रखने और मूल्य सापेक्षता का अनुमान लगाकर मिलने वाली क़ीमत पर विचार करने की गुंजाइश रहती है और इसे ध्यान में रखते हुए वे उपयुक्त फ़सलें उगाते हैं और उसे बाज़ार में या सरकार को, जहां भी ज्यादा क़ीमत मिलती है, बेचते हैं। यही कारण है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य किसान के लिए अंतिम सहारा बनता है।

देश की लगभग 25 फ़सलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य शोधित किया जाता है। लेकिन प्रमुख रूप से ये गेहूं और चावल को प्रभावित करती हैं और कुछ हद तक मोटे अनाज भी इसके दायरे में आते हैं। अन्य सभी फ़सलों के मामले में बाज़ार की क़ीमत ऊंची होती है और किसान खुले बाज़ार में अपनी उपज बेचना पसंद करते हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य के अंतर्गत सरकार सभी फ़सलों के मूल्यों में बढ़ोतरी करती रही है और यह वृद्धि पिछले कुछ वर्षों में खासतौर से देखी गई है। इसकी एक झलक नीचे दी गई तालिका से मिल सकती है। इसके कई कारण हो सकते हैं। कभी मुद्रास्फीति की जवाबी कार्रवाई के रूप में तो कभी किसानों को कुछ प्रकार के अनाज अधिक उगाने के प्रोत्साहन के रूप में समर्थन मूल्य बढ़ाए गए हैं। अनेक ऐसे अवसर भी आए, जब इसे किसानों में सस्ती लोकप्रियता पाने के हथकंडे के रूप में इस्तेमाल किया गया।

ऊंची क़ीमतों के दो नतीज़े दिखाई दिए हैं। पहला तो यह कि न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी की रुझान पैदा हो गई है। इसे सभी तरह के अनाजों की क़ीमतों का बेंचमार्क माना जाता है, भले ही सरकार उनकी खरीद न करती हो। मूल्य वृद्धि की रुझान आजकल काफी महत्वपूर्ण हो गई है और इससे यह सवाल भी पैदा हो गया है कि किसानों और उपभोक्ताओं में से किसका हित अधिक महत्वपूर्ण है। हक़ीक़त यह है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य में चौतरफा बढ़ोतरी से खाने-पीने की आम वस्तुएं महंगी हो गई हैं और किसान भी इससे अछूते नहीं हैं, क्योंकि आखिरकार वे भी अन्य उत्पादों के उपभोक्ता हैं।

तालिका-1

न्यूनतम समर्थन मूल्य (रुपये प्रति क्विंटल)

अनाज	वित्त वर्ष 2006	वित्त वर्ष 2010	वित्त वर्ष 2011
गेहूं	650	1100	-
धान	570	950	1000-1030
मक्का	540	840	880
अरहर	1400	2300	3000
मूंग	1520	2760	3170
उड़द	1520	2520	2900
गन्ना	79.50	129.84	139.12
सोयाबीन	900	1350	1400
मूंगफली	1520	2100	2300

स्रोत : *कृषि मंत्रालय ' : एफआरपी*

खाद्य सुरक्षा : सामाजिक विकास की पहल

● ओ.पी. शर्मा

प्रत्येक व्यक्ति को तन ढकने के लिए वस्त्र, सिर के ऊपर छत और भूख मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। कम वस्त्र और छत के बिना व्यक्ति का जीवन संभव है, किंतु भोजन बिना जीवन दुर्लभ है। इसीलिए व्यक्ति रोटी के लिए कठोर मेहनत करते ही हैं साथ ही सरकार पर भी लोगों को खाद्य मुहैया कराने का दायित्व है। कई बार व्यक्तियों की मेहनत और सरकार के प्रयत्न के बावजूद आम लोगों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसके पीछे खाद्यान्न संकट और खाद्य महंगाई प्रमुख कारण है। खाद्यान्न संकट की दशा में लोगों के पास क्रयशक्ति होने के बावजूद उन तक पर्याप्त खाद्यान्न नहीं पहुंच पाता है। खाद्य महंगाई से खाद्यान्न आम लोगों की पहुंच से दूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में घरों में 'थाली' का बजट बढ़ जाता है। खाद्यान्न संकट और खाद्य महंगाई दोनों ही स्थिति में ग़रीब के लिए दो वक़्त की रोटी जुटाना मुश्किल हो जाता है। फिर प्रकृतिजन्य और मानव निर्मित जो घटनाएं पनप रही हैं उनमें अकाल, बाढ़, भूकंप, अतिवृष्टि, जनाधिक्य, जलवायु परिवर्तन आदि ख़तरनाक रूप में सामने हैं। इस सब का असर खाद्य उपलब्धता पर पड़ रहा है। उधर विश्व के देशों ने आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में खाद्य उपलब्धता के क्षेत्रों को समेट कर रख दिया है और जो बचे हुए हैं उनके उत्पादों का उपयोग बायोफ्यूल जैसे उत्पादन में शुरू कर दिया है।

खाद्यान्न उत्पादन में ठहराव की प्रवृत्ति और जनसंख्या वृद्धि के चलते भारत में खाद्य सुरक्षा बड़ी चुनौती के रूप में उभर कर सामने आ गई है। भारत के लिए चिंता इसलिए और अधिक बढ़ गई है कि विश्व अर्थव्यवस्था हाल के वर्षों में उत्पन्न खाद्यान्न संकट के समाधान में भारत की भूमिका को प्रमुख मानती है। इसके पीछे कारण भारत की अर्थव्यवस्था का कृषि प्रधान होना है। विकसित देश और अन्य जो कृषि प्रधान देश हैं उनमें कृषि की भूमिका तेज़ी से घट गई है। हक़ीक़त यह है कि भारत कृषि प्रधान देश होने के बावजूद कभी भी कृषि में बड़ी भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं रहा है। नब्बे के दशक से पहले जीडीपी में कृषि की भूमिका मुखर थी, किंतु कृषि उत्पादन देश की मांग के अनुरूप भी थोड़ा था। नब्बे के बाद के बीस वर्षों में कृषि की भूमिका जीडीपी में घटकर आज लगभग सतरह प्रतिशत रह गई है। इसके बावजूद कृषि की बड़ी उपलब्धि यह है कि आज देश के सौ करोड़ से अधिक आबादी को खाद्यान्न मुहैया है। इसके बावजूद कृषि की वर्तमान स्थिति को देखते हुए भारत विश्व स्तर पर खाद्यान्न संकट के समाधान में बड़ी भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं है। भारत में ग़रीबी का नासूर है। ग़रीबों को खाद्यान्न उपलब्ध कराना सदैव चुनौती रहा है।

खाद्य असुरक्षा

भारत में बहुतेरे लोग खाद्य असुरक्षा और कुपोषण से ग्रसित हैं। भविष्य में खाद्यान्न समस्या अधिक गंभीर हो सकती है। आज भारत विकास के पथ पर तो है मगर सभी लोगों को भरपेट भोजन न मिले तो विकास की महत्ता घट जाती है। करोड़ों लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने का भार देश के किसानों के कंधों पर है। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी है मगर कृषि ही पिछड़ी हुई हो और किसान की माली हालत खस्ता हो, ऐसी स्थिति में खाद्य सुरक्षा चुनौती से कम नहीं है। गांवों में ग़रीबी मुखर है। जब खेत जोतने वाले बहुत से किसानों को और ग्रामीणों को भरपेट रोटी नहीं मिलती है तो वे खाद्य उपलब्धता बढ़ाने में भूमिका कैसे निभा सकते हैं। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा है कि ''हमारे किसानों की खुशहाली के बिना भारत की खुशहाली मुमकिन नहीं है।'' खाद्य सुरक्षा किसानों की खुशहाली पर निर्भर है। देश में किसानों की माली हालात सुधारने के लिए लाखों किसानों के कर्ज़ माफ़ किए गए हैं। आज किसानों को कम ब्याज दर पर बैंक ऋण मुहैया करा रही है। केंद्र सरकार ने कृषि उत्पादों का खरीद मूल्य बढ़ाया है। कृषि और किसानों के मज़बूत होने से अर्थव्यवस्था की आंतरिक ताक़त बढ़ती है। अर्थव्यवस्था की आंतरिक मज़बूती से ही भारत वर्ष 2009 की वैश्विक मंदी का मुक़ाबला करने में सफल रहा है। भारतवर्ष 1991-92 से आर्थिक उदारीकरण का मार्ग आत्मसात करने के बाद और विशेष रूप से इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक में विश्व आर्थिक पटल पर तेज़ गति से विकास करने वाले देशों की सूची में चीन के बाद सिरमौर है।

खाद्य सुरक्षा के कदम

भारत की आर्थिक समृद्धि का लाभ सभी देशवासियों को मिलना चाहिए, यह उनका हक़ भी है। भारत सरकार आर्थिक समृद्धि का लाभ देशवासियों के बीच बांटने के लिए प्रयत्नशील है। मनरेगा से गांवों के ग़रीबों का कायापलट हो रहा है। हाल ही में देश में शिक्षा का मौलिक अधिकार अधिनियम लागू हो चुका है।

खाद्य सुरक्षा : एक ज्वलंत समस्या

● अनिता मोदी

खाद्यान्नों की क़ीमतों में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के कारण पूरे विश्व में खाद्य सुरक्षा पर ख़तरे के बादल मंडरा रहे हैं। विश्व बैंक की रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया है कि गत तीन वर्षों में खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में 83 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज़ की गई है जिसके कारण विश्व में भूखों की क़तार बढ़ती जा रही है। गौरतलब है कि वर्ष 2008-09 में विश्व में भूखों की संख्या 4 करोड़ बढ़ जाने से भुखमरी का आंकड़ा 96 करोड़ पर पहुंच गया है। जबकि वर्ष 2000 में विश्व के प्रमुख देशों ने वर्ष 2015 तक भुखमरी का आंकड़ा आधा करने का सहस्राब्दी लक्ष्य रखा था किंतु वास्तविकता इसके प्रतिकूल रही है। खाद्यान्नों की बढ़ती क़ीमतों के कारण ग़रीब व्यक्ति के लिए परिवार का पेट पालना दुष्कर होता जा रहा है।

वर्तमान में हमारा देश भी खाद्य समस्या की ज्वाला में धधक रहा है। खाद्यान्नों की बढ़ती क़ीमतों के कारण खाद्यान्न ग़रीब वर्ग की पहुंच के बाहर होता जा रहा है। ऐसी निराशाजनक स्थिति में देश के प्रत्येक नागरिक को खाद्यान्न सुरक्षा कवच प्रदान करना सरकार का प्रथम दायित्व बन जाता है। फरवरी 2009 में जारी प्रो. स्वामीनाथन की रिपोर्ट 'ग्रामीण भारत में खाद्य असुरक्षा की स्थिति' में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि देश में कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है। निराशाजनक तथ्य यह है कि वर्ष 1990 के पश्चात लोगों के कुपोषण के स्तर में जो सुधार दर्ज़ किया गया था उसमें फिर गिरावट प्रारंभ हो गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार खाद्य सुरक्षा के तीन तत्व हैं। प्रथम तत्व के अनुसार खाद्य सुरक्षा उत्पादन और आयात पर निर्भर है, दूसरे तत्व के आधार पर खाद्य उपलब्धता व्यक्तियों की क्रयशक्ति पर आश्रित है, तीसरा तत्व खाद्य अवशोषण है जिसके अंतर्गत सुरक्षित पेयजल, पर्यावरणीय स्वास्थ्य विज्ञान, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा शामिल है।

ज्ञातव्य है कि जनसंख्या व आय में वृद्धि होने से एक तरफ खाद्यान्नों की मांग तीव्र गति से बढ़ती है तो दूसरी तरफ खाद्यान्नों की पूर्ति में अपेक्षित वृद्धि नहीं होने से खाद्यान्नों की मांग व पूर्ति में अंतराल निरंतर बढ़ता जाता है, परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की क़ीमतों में बढ़ोतरी से खाद्यान्न ग़रीब वर्ग की पहुंच के बाहर होता जाता है। अत: देश की समग्र जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम खाद्यान्नों की भौतिक उपलब्धि बढ़ाना आवश्यक है। खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात अनेक योजनाओं, नीतियों व कार्यक्रमों को मूर्त रूप प्रदान किया। अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन, भूमि सुधार कार्यक्रम, हरित क्रांति, न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति, फ़सल बीमा योजना आदि के माध्यम से कृषि उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में प्रभावी प्रयास किए गए। यही नहीं, 9वीं पंचवर्षीय योजना में खाद्य सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई तथा यह स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया कि देश का पहली प्राथमिकता खाद्य सुरक्षा प्रणाली को विकसित करना है ताकि देश से अकाल का ख़तरा समाप्त किया जा सके। इसी क्रम में सरकार ने वर्ष 2007 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन की स्थापना की जिसका मूलभूत उद्देश्य गेहूं, चावल व दलहन की उत्पादकता में वृद्धि करना है, ताकि देश में खाद्य सुरक्षा की स्थिति प्राप्त की जा सके। इस योजना के अंतर्गत अनाज़ उत्पादन बढ़ाकर 18 लाख टन तथा दाल उत्पादन 2 लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया है। इस योजना के अंतर्गत 11वीं पंचवर्षीय योजना के लिए 4,882.48 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। निस्संदेह इस योजना के कारण गेहूं, चावल व दालों की उत्पादकता में वृद्धि हुई है, दलहन उत्पादन के प्रति किसानों का रुझान बढ़ा है। किसानों को प्रमाणित बीजों पर 50 प्रतिशत की छूट उपलब्ध होने से किसानों ने इन बीजों के प्रयोग को प्राथमिकता दी जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई है। कृषि विभाग से समय-समय पर आवश्यक सुझाव व दवाइयां उपलब्ध होने से फ़सल की बर्बादी पर रोक लगी है। इस प्रकार से गेहूं, चावल व दलहन की पैदावार में बढ़ोतरी होने से खाद्यान्नों की उपलब्धता बढ़ रही है। वर्ष 2008-09 में सरकार ने किसानों के हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए 2.5 हज़ार करोड़ रुपये की राष्ट्रीय किसान विकास योजना प्रारंभ की। इस कार्यक्रम के अंतर्गत ज़िलों में संचालित विभिन्न केंद्रीय योजनाओं को प्रभावी तौर पर समन्वित करने पर ज़ोर दिया गया।

कृषि मंत्रालय ने यह अनुमान व्यक्त किया है कि वर्ष 2012 तक खाद्यान्नों की मांग में 2.50 करोड़ टन की वृद्धि होगी। इस बढ़ती मांग को पूरा करने करने के लिए आगामी चार वर्षों में गेहूं का उत्पादन 8 लाख टन, चावल का 10 लाख टन व दालों का उत्पादन 2 लाख टन बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। यही नहीं, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कृषि में गतिहीनता की निराशाजनक स्थिति का निवारण करने तथा उत्पादकता में वृद्धि लाने के लिए 25,000 करोड़ रुपये के विशेष पैकेज़ की घोषणा की है ताकि खाद्य सुरक्षा का उद्देश्य हासिल किया जा सके। प्रधानमंत्री ने 15 अगस्त, 2009 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कृषि को विशेष प्राथमिकता देते हुए कहा कि कृषि के क्षेत्र में सफलता के लिए हमें आधुनिक उपायों का सहारा लेना होगा। छोटे और सीमांत किसानों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए हमारे वैज्ञानिकों को नयी तकनीकें खोजनी होंगी। देश को एक और हरित क्रांति की ज़रूरत है और हम इस दिशा में भरपूर कोशिश करेंगे। हमारा मकसद है- कृषि में 4 फीसदी सालाना विकास और मुझे विश्वास है कि अगले पांच सालों में हम इस लक्ष्य को हासिल कर सकेंगे।

खाद्य सुरक्षा के द्वितीय तत्व के अनुसार खाद्यान्नों की उपलब्धता व्यक्तियों की क्रयशक्ति पर निर्भर है।

भूख की भयावह होती आग

● अर्चना श्रीवास्तव

किसी भी राष्ट्र का पहला कर्तव्य होता है कि वह अपने समस्त नागरिकों को न केवल वर्तमान बल्कि भविष्य में भी अकाल, बाढ़, भूकंप जैसी आपात परिस्थितियों में पेट भरने के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराए। जब जनता को पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिल पाता है तो उनकी शारीरिक-बौद्धिक विकास बाधित होने लगती है और वे अनेक प्रकार की सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों में शामिल होने लगते हैं। भूख की आग वैसे तो कमोबेश पूरे विश्व को झुलसा रही है, किंतु भारत में यह भयावह होती जा रही है। योजना आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1976-80 के दौरान प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 190 किग्रा प्रतिवर्ष थी जो वर्ष 2004-07 में घटकर प्रतिव्यक्ति 186 किग्रा प्रतिवर्ष रह गई है, जबकि दालों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता 1981-85 के 19 किग्रा प्रतिवर्ष से घटकर 2004-07 में प्रतिव्यक्ति मात्र 12 किग्रा प्रतिवर्ष रह गई है।

भारत को गांवों का देश माना जाता है। यहां आज भी लगभग 70 प्रतिशत आबादी गांव में निवास करती है और अपनी रोज़ी-रोटी के लिए कृषि पर निर्भर है। न केवल 70 प्रतिशत बल्कि संपूर्ण आबादी का भरण-पोषण करने वाली कृषि की उपेक्षा और लापरवाही इस क़दर हुई कि अब हमें अपने देशवासियों का पेट भरने के लिए अनाज का निर्यात प्रतिबंधित करना पड़ रहा है। ऐसा लग रहा है कि हमारी स्थिति पुन: 60 के दशक जैसी हो रही है। इसलिए अब कृषि की दशा और दिशा में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता आ गई है।

सन् 1965-66 के अकाल ने हरित क्रांति को उत्प्रेरित किया था। उन्नत बीज, रासायनिक खाद, उर्वरक, नयी तक़नीक, सिंचाई व्यवस्था को अपनाते हुए हरित क्रांति का उन्मेष हुआ। फलस्वरूप अनाज उत्पादन में आशातीत बढ़ोतरी हुई और हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर ही नहीं बने अपितु अनाज निर्यातक देशों की कतार में शामिल हो गए। खाद्यान्न उत्पादन 1950-51 के 5 करोड़ टन से बढ़कर 2007-08 में 23.078 करोड़ टन हो गया। किंतु हरित क्रांति पूंजी प्रधान थी। इसका लाभ वे किसान ही उठा सके जिनमें सिंचाई के साधन, रासायनिक उर्वरक और उन्नत बीज के ख़र्चों को वहन करने की क्षमता थी। अत: बड़े किसान इससे लाभान्वित हुए और छोटे किसान इसका लाभ उठाने से वंचित रहे। दूसरी ओर हरित क्रांति से मुख्य रूप से गेहूं और चावल का उत्पादन बढ़ा जिससे कार्बोहाइड्रेट्स की पूर्ति तो हुई किंतु प्रोटीन का मुख्य स्रोत दालों के उत्पादन में बढ़ोतरी नहीं हो सकी।

हरित क्रांति के दौरान सिंचाई, जंगलों की कटाई, रासायनिक खाद, कीटनाशक इत्यादि का अंधाधुंध प्रयोग हुआ जिसके दुष्परिणाम अब दिखाई पड़ने लगे हैं। आज मृदा अपरदन, जैव विविधता में ह्रास, वैश्विक तपन, भूमि लवणता आदि हरित क्रांति की ही देन हैं जिनके फलस्वरूप मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षीण होने लगी है। यही कारण है कि सन् 1990 के बाद से खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी स्थिर-सी हो गई है। इसे देखते हुए हरित क्रांति के पैरोकार डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन अब रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के बजाय जैविक उर्वरक, हरी खाद, गोबर की खाद के प्रयोग को प्रोत्साहित करते हुए द्वितीय हरित क्रांति की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं ताकि सतत कृषि का उद्भव हो और पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़े बिना प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न उत्पादन हो सके।

इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन ने अपनी रिपोर्ट 'वर्ल्ड्स मोस्ट डिप्राइव्ड : कैरेक्टेरिस्टिक्स एंड कॉजेज ऑफ एक्ट्रीम पावर्टी एंड हंगर' में भूखे लोगों की वैश्विक सूची में 119 विकासशील देशों की सूची में भारत को 96वां स्थान दिया है, जबकि पाकिस्तान 88वें स्थान पर एवं चीन 47वें स्थान पर है। सूची में जिस देश का स्थान जितना नीचे है वह भूख से उतना ही बेहाल है। विगत तीन वर्षों से देश की अर्थव्यवस्था औसत 8 प्रतिशत की दर से विकास कर रही है जिससे संसाधन और प्रतिव्यक्ति आय में काफ़ी बढ़त हुई है।

समकालीन दौर में खाद्य सुरक्षा

● सुधीश कुमार पटेल

साठ के दशक में खेत में पैदा होने वाले खाद्यान्न की क़ीमत और उपभोक्ता तक पहुंचने पर उसकी क़ीमत के बीच 59 प्रतिशत का फर्क़ होता था। अब यह बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया है। इसी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि बाज़ारवादी ताक़तें किस क़दर खाद्यान्न की क़ीमतों के साथ खेल रही हैं। इसलिए अब समय आ गया है कि भूख के भय से मुक्ति का उपाय देशज कृषि व्यवस्था में तलाशा जाए।

वैश्वीकरण के इस दौर में भी आमजन मूलभूत सुविधाओं के लिए जूझ रहे हैं। खाद्यान्न संकट और भुखमरी की समस्या दुनिया की आर्थिक व्यवस्था की असफलता की कहानी बयां कर रही है। दुनिया आर्थिक मंदी की मार झेल रही है। ग़रीबी हटाने जैसे कॉस्मेटिक नारे भी अब अतीत में खो गए हैं। ऐसे में पूंजीवाद पर आधारित भूमंडलीकरण के जिस युग में दुनिया जी रही है उसने अमीरों को और भी ज्यादा अमीर और ग़रीबों को और भी ज्यादा ग़रीब बनाया है। अमीरपरस्त आर्थिक नीतियों की वज़ह से एक खास तबके का बैंक बैलेंस काफ़ी तेज़ी से बढ़ा और ये लोग तेज़ी से शेयर बाज़ार की ओर गए। जहां से ये थोड़े ही समय में अपनी मूल पूंजी से कई गुना ज्यादा के स्वामी हो गए। वहीं दूसरी ओर इस दुनिया में ऐसे लोगों की भी बड़ी संख्या है जिन्हें दो वक़्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पा रही है। आज भी दुनिया के कई हिस्सों में लोग भूख की वज़ह से मर रहे हैं। खाद्यान्न संकट ने भुखमरी की समस्या को और गहरा बना दिया है।

विश्व के समक्ष खाद्य संकट ने विकराल रूप धारण कर लिया है, जिससे खाद्यान्न की आवश्यकता की पूर्ति के मक़सद से किए जाने वाले विरोध प्रदर्शन में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है। यह विरोध प्रदर्शन कई देशों में हिंसात्मक और उग्र भी रहा है। खाद्यान्न के मसले पर मलेशिया, मोरक्को, रूस, थाईलैंड, ट्यूनेशिया, कैमरून, इंडोनेशिया, केन्या, सेनेगल, हैती, मोजांबिक, पाकिस्तान और यमन जैसे देशों में हिंसा हो चुकी है। खाद्यान्न संकट के गहराने से कई अन्य देशों में भी हिंसात्मक प्रदर्शन हुए हैं। इनमें बांग्लादेश, ब्राज़ील, मिस्र, मैक्सिको, पेरू, फिलीपींस और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश शामिल हैं। इसके अलावा शांतिपूर्ण तरीक़े से खाद्यान्न के बढ़ते दामों को लेकर कई देशों में विरोध प्रदर्शन होते रहते हैं। निस्संदेह खाद्य सुरक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाना अत्यावश्यक है। इसी मूलमंत्र को दृष्टिगत रखते हुए इस विकट समस्या के समाधान के लिए विश्व के कई देश विविध प्रकार की नीतियों को क्रियान्वित करते हुए अपने देश के नागरिकों को खाद्य सुरक्षा का कवच प्रदान करने हेतु प्रयासरत हैं।

जब देश में खाद्य पदार्थों के दाम आसमान छू रहे हों तब यह ख़बर विचलित करता है कि भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में समुचित व्यवस्था न होने और भंडारण में बरती जाने वाली लापरवाही के चलते बड़ी मात्रा में खाद्यान्न सड़ रहे हैं। लेकिन निगम के अधिकारी कोई सबक लेना ज़रूरी नहीं समझते, उलटे हक़ीक़त पर पर्दा डालने की कोशिश करते हैं। इस लापरवाही के अलावा इसके कुछ व्यवस्थागत कारण भी हो सकते हैं। सरकारी गोदाम बहुत पुराने हैं उनकी भंडारण क्षमता कम है। यह विचित्र बात है कि एक ओर सरकार खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का कानून बनाना चाहती है मगर दूसरी ओर उसके पास खाद्यान्न भंडारण का पुख़्ता इंतज़ाम नहीं है। बर्बादी का एक कारण राज्य सरकारों का जनवितरण प्रणाली के लिए अपने हिस्से का अनाज समय से न उठाना भी रहा है। चूंकि इन गोदामों से राज्य सरकारों को खाद्यान्न अपने गोदामों तक पहुंचाने के लिए ढुलाई का ख़र्च वहन करना पड़ता है, शायद इसलिए कई राज्य सरकारें तत्परता नहीं दिखातीं। इसकी जिम्मेदारी क्यों नहीं तय की जाती?

पिछले वर्ष जब खाद्यान्नों के मूल्य तेज़ी से बढ़ रहे थे तब अमरीकी राष्ट्रपति ने कहा था कि भारत और चीन जैसे विकासशील देशों में ग़रीबों की आय बढ़ने से खाद्यान्न की मांग बढ़ी है, जिससे महंगाई बढ़ रही है, तब उनकी बहुत आलोचना हुई थी। यह कितनी अमानवीय दलील है कि महंगाई इसलिए बढ़ रही है, क्योंकि ग़रीब भरपेट भोजन करने लगे हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह सच नहीं है। खाद्यान्न के दाम बढ़ने के लिए खाद्यान्न पर बाज़ार का बढ़ता प्रभुत्व कम जिम्मेवार नहीं है। अप्रैल 2008 में जारी फेडरल बैंक ऑफ कंसास की रपट बताती है कि खाद्यान्न पर बाज़ारवादी ताक़तों का बढ़ता प्रभुत्व इसकी बढ़ती क़ीमतों के लिए सर्वाधिक जिम्मेवार है। साठ के दशक में खेत में पैदा होने वाले खाद्यान्न की क़ीमत और उपभोक्ता तक पहुंचने पर उसकी क़ीमत के बीच 59 प्रतिशत का फर्क़ होता था। अब यह बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया है। इसी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि बाज़ारवादी ताक़तें किस क़दर खाद्यान्न की क़ीमतों के साथ खेल रही हैं। वहीं दूसरी ओर आर्थिक विकास के स्तर पर भूख का हमारा मानक बेहद निराशाजनक है।

भारत में खाद्य सुरक्षा
चुनौतियां एवं संभावनाएं

● विनोद शुक्ला

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व की आबादी के भरण-पोषण की पर्याप्त क्षमता होते हुए भी करोड़ों लोग निर्धनता और भुखमरी के शिकार हैं। संपूर्ण मानव जाति को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार है और जीने के लिए पोषणयुक्त भोजन की उपलब्धता आवश्यक है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा पहले विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन में यह विचार व्यक्त किया गया कि खाद्य सुरक्षा वह स्थिति है जिसमें सब लोगों को अपनी आहार संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हर समय पर्याप्त सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो और सक्रिय एवं स्वस्थ्य जीवन बिताने के लिए अपनी पसंद का ऐसा भोजन प्राप्त करना उनके लिए भौतिक एवं आर्थिक दृष्टि से संभव हो।

वर्तमान परिदृश्य को देखा जाए तो भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप बाढ़, सूखा, अकाल एवं अनावृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ मानवकृत पर्यावरण प्रदूषण से सीधे प्रभावित होकर कृषि उत्पाद और कृषि भूमि दोनों में गुणात्मक ह्रास दिखाई दे रहा है। कृषि के प्रति मानवीय संवेदना में भी परिवर्तन हुआ है। खाद्य सुरक्षा का ज्वलंत स्वरूप इसकी समस्या और समाधान के लिए सीधी चुनौती है। आंकड़े बताते हैं कि 1995 में 20 करोड़ भारतीयों को भुखमरी का शिकार होना पड़ा। इसके उपरांत भी उस समय भारत ने 3,125 करोड़ रुपये का गेहूं और आटा तथा 6,240 करोड़ रुपये का चावल निर्यात किया जबकि ये दोनों ही अनाज भारतीय लोगों के भोजन के मुख्य अंग हैं।

देश में कृषि का स्वरूप एक समान नहीं है। खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से भौगोलिक स्थिति के अनुसार उत्पादकता में अंतर मिलता है लेकिन कृषि में रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने अनाज की पौष्टिकता को प्रभावित किया है। इस संबंध में खाद्यान्न वितरण प्रणाली भी दोषपूर्ण है। समाज में भोजन प्राप्त करने का ढंग अलग-अलग होने के कारण बाजार में उपलब्ध खाद्य पदार्थ मिलावट के चलते अपनी पोषकता खोते जा रहे हैं। दूसरी तरफ देश में मोटे अनाजों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता पिछले चार दशकों से लगतार घटी है। परिणामस्वरूप इन अनाजों के मूल्य लगातार बढ़ रहे हैं। चावल-गेहूं की पैदावार बढ़ने पर भी उचित भंडारण की व्यवस्था न होने के कारण उनकी सुरक्षा नहीं हो पा रही है और वे व्यर्थ हो जा रहे हैं। इन सबके साथ कृषि उत्पादन पर कम वर्षा, अत्यधिक नमी, फसलों पर कीड़ों का प्रकोप आदि का भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

विश्व खाद्य सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार सरकारों का मौलिक दायित्व है कि उच्च खाद्य उत्पादन करें तथा देश में तथा अन्य देशों के साथ मिल कर कार्य करें। सरकारों को तत्काल निम्न आय समूह और संवेदनशील समूहों के लोगों के लिए दीर्घकालिक कुपोषण और न्यूनता के रोगों के विरुद्ध गंभीर लड़ाई शुरू करनी चाहिए। खाद्य उत्पादन के प्रयत्न को किसी भी रूप में खाद्यान्नों की हानि के रोकथाम के सभी प्रयासों द्वारा संपुष्ट होना चाहिए। खाद्य सुरक्षा एक विश्वव्यापी समस्या बन गई है इसलिए किसी एक देश की सीमा में रहकर इसका निदान नहीं किया जा सकता है। भारत की खाद्य सुरक्षा के समक्ष कई चुनौतियां हैं जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं से आबद्ध हैं। इनका समाधान भी संकुचित विचारधारा से ऊपर उठकर किया जा सकता है।

इस समय निर्धनों की खाद्य सुरक्षा को सबसे अधिक ख़तरा है। ये आधारभूत कृषि संसाधनों की लागत में वृद्धि, खाद्यान्न उत्पादन में कमी, कृषि उत्पादन की कीमतें, कृषि का व्यवसायीकरण, उपभोग के ढांचे में बदलाव और फसल उत्पादन के ढांचे में बदलाव के कारण अपने जीवन-यापन के लिए खाद्यान्न की पौष्टिक आपूर्ति सुगमता से नहीं कर पा रहे हैं। हरित क्रांति योजना के तहत किसानों का नकदी फ़सल लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन फ़सलों की ओर झुकाव बढ़ने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य असुरक्षा और भुखमरी पैदा हो गई। देश में नहरों व नलकूपों से सिंचाई की सघनता बढ़ने के कारण कृषि भूमि में खारेपन की समस्या उभरकर आ रही है। देश में खाद्यान्न उत्पादन के उच्च स्तर को प्राप्त करने के लिए तथा बढ़ती हुई आबादी की भूख मिटाने के लिए कृषि भूमि का शोषण हो रहा है। पंजाब और हरियाणा में जमीन की उत्पादकता में गिरावट आनी शुरू हो गई है। इन राज्यों का अधिकांश भूमिगत जलस्तर तेज़ी से नीचे जा रहा है। इससे अधिक पानी वाले खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट दिखाई दे रही है। जहां देश में खाद्यान्न एवं अन्य फसलों के उत्पाद की अधिक आवश्यकता है वहीं कृषि भूमि में कमी के साथ-साथ अपरदन, बाढ़, सूखा आदि के कारण भी भूमि से उत्पादन लेना संभव नहीं हो पा रहा है।

खाद्य सुरक्षा पर आसन्न संकट को देखते हुए राष्ट्रीय कृषि नीति में सुधार कर तथा अन्य जैव तंत्रों को खाद्य कड़ी में जोड़ते हुए कृषि प्रणाली सुधार के द्वारा इस समस्या पर नियंत्रण पाया जा सकता है। जैविक कृषि भूमि के गिरते उर्वरा स्तर को स्थिर रखकर उसमें सुधार किया जा सकता है। इसके साथ ही जनसंख्या वृद्धि पर भी नियंत्रण आवश्यक है। सघन वृक्षारोपण, जैविक कृषि, जल संरक्षण, जीन बैंक, बीज बैंक आदि की व्यवस्था कर किसान एवं उपभोक्ताओं के बीच प्रत्यक्ष संबंधों का विकास कर स्थानीय लोगों में कृषि के अतिरिक्त अन्य विकल्पों पर ध्यान देते हुए बागवानी, पशुपालन, मछलीपालन आदि को प्रोत्साहन देकर और खाद्य पदार्थों में मिलावट के विरुद्ध जनजागरण फैलाकर हम खाद्य सुरक्षा कर सकते हैं। ❑

(लेखक एमडीपीजी कॉलेज, प्रतापगढ़, उ.प्र. में भूगोल के विभागाध्यक्ष हैं।
ई-मेल: vicaspratapgarh@gmail.com)

रसोई गैस स्टोव के लिए ऑटोस्टॉपर

कल्पना कीजिए कि आपकी मां घर पर अकेली हैं और बगीचे में पौधे सींच रही हैं। उन्होंने रसोईघर में गैस पर प्रेशर कुकर में कोई चीज़ पकाने के लिए रखी है जिसमें सिर्फ़ एक सीटी लगने की ज़रूरत है। लेकिन सीटी की आवाज़ बगीचे में सुनाई नहीं पड़ती। प्रेशर कुकर में चढ़ाई गई चीज़ ज्यादा पक जाती है और गैस भी बेकार जलती रहती है। इस प्रकार की समस्या के समाधान के लिए बहुमुखी प्रतिभा के धनी 20 वर्षीय एक छात्र दावलसाब ने एक ऑटोस्टॉपर बनाया है जो सीटी की आवाज़ सुनकर पहले से निर्धारित किए गए निर्देश के अनुसार गैस स्टोव को बंद कर सकता है।

बचपन की उपलब्धियां

दावलसाब स्कूली दिनों में एक प्रतिभाशाली छात्र थे। वह कुशल चित्रकार तथा राज्य स्तर के तैराक भी थे। शुरू से ही उनमें वैज्ञानिक दृष्टि और प्रचुर सृजनात्मक प्रवृत्ति थी। वैज्ञानिक प्रदर्शनियों में वह हमेशा शामिल होते थे। पांचवीं कक्षा के छात्र के रूप में उन्होंने एक ऐसी नौका का मॉडल बनाया जो अन्य नावों से एकदम अलग थी। यह समाचार स्थानीय अख़बारों में छपे और उनका साक्षात्कार आकाशवाणी से प्रसारित किया गया। जब वह नौंवीं कक्षा में थे तो उन्होंने प्रदर्शनी में रखने के लिए एक ट्रक का विशिष्ट मॉडल बनाया। हालांकि शिक्षकों को यह पसंद नहीं आया और उन्होंने उसे प्रदर्शनी में रखने की अनुमति नहीं दी। दावलसाब ने इस अपमान को एक चुनौती माना और अगले समारोह के लिए बेहतर प्रदर्शन योग्य मॉडल बनाने की सोची। वह डिस्कवरी और नेशनल जियोग्राफ़िक चैनल बहुत रुचि के साथ देखते थे। एक बार जब प्रविष्टियां आमंत्रित की गईं उन्होंने वायुयान का एक नया डिज़ाइन भेजा। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अमरीका में नासा जाने का अवसर मिला। उन्होंने एक प्रतियोगिता में भाग लिया हालांकि उन्हें पुरस्कार नहीं मिला।

दसवीं कक्षा के छात्र के रूप में उन्होंने गैस ऑटोस्टॉपर का मॉडल बनाया। उनके दिमाग में इसे बनाने का विचार तब आया जब उन्होंने भोजन पक जाने के बाद गैस खुली रह जाने से होने वाले नुक़सान को देखा। स्कूल के उनके शिक्षक एस. गांवकर, हुलुर, प्रकाश और हेडली उसके समर्थक थे। हालांकि प्रदर्शनी में उनके इस मॉडल को कोई पुरस्कार नहीं मिल पाया लेकिन उन्हें मीडिया में काफ़ी प्रचार मिला।

रसोई गैस स्टोव ऑटोस्टॉपर

यह पूर्व निर्धारित समय पर गैस का प्रवाह रोक देने का समय नियंत्रित विद्युत उपकरण है। भोजन पक जाने के बाद टाइमर (समय नियंत्रित करने वाला उपकरण) गैस रेगुलेटर बंद कर देता है। इसमें कुकर की सीटियां गिनने का डिजिटल डिस्प्ले सिस्टम भी लगा है। विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का पकने का समय घड़ी की मदद से पूर्व निर्धारित कर दिया जाता है और भोजन पकने के बाद गैस ऑटोस्टॉपर के जरिये खुद बंद हो जाती है। गैस बंद होते ही यह स्टॉपर अलार्म भी देता है। इसके लिए स्टोव की नॉब को धागे से टाइमर के साथ जोड़ा जाता है। उपकरण में दो डीसी मोटरें लगाई गई हैं जो 12 वोल्ट की बैटरी से चलती हैं। जैसे ही पूर्व निर्धारित समय हो जाता है, टाइमर नॉब को घुमाकर गैस बंद कर देता है। गैस बंद होते ही यह उपकरण अलार्म संकेत देता है। इस नवाचारी उपकरण से भोजन अधिक नहीं पकता, गैस की बचत होती है और समय, ऊर्जा और धन की बर्बादी भी नहीं होती है।

साहित्य में पूर्व में ऐसे अनेक उपकरणों की चर्चा है जो पूर्व-निर्धारित समय पर गैस प्रवाह रोक सकते हैं। लेकिन यह ऐसा उपस्कर है जिसे मौजूदा गैस चूल्हों पर फिट किया जा सकता है, साथ ही यह अलार्म संकेत देता है और सीटियां गिनकर उनकी संख्या डिस्प्ले करने में भी सक्षम है। दावलसाव के नाम एनआईएफ ने पेटेंट का आवेदन किया है। इसका नंबर है 73/सीएचई /2009।

अब तक इस नवाचारी ने लगभग छह आज़माइशी प्रयोग किए हैं और भविष्य में भी ऐसे प्रयोग जारी रखने की योजना है। उनका विश्वास है कि डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का वर्ष 2020 का सपना साकार किया जा सकता है और इस पर वह काम करने का पक्क़ा इरादा रखते हैं। उन्होंने रक्षा बलों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले कई मॉडल और अन्य कई उपकरण बनाने की योजना बनाई है। इसके लिए वह अपने उस ज्ञान का प्रयोग करना चाहते है जिसे उन्होंने एनसीसी कैडट के रूप में अर्जित किया है। दूसरी तरफ वह कई अन्य आविष्कार करना चाहते हैं जो भारत के आम आदमी की समस्याएं हल करने में सहायक हों जैसे– उपयुक्त पेयजल, खारे पानी को पीने के लायक बनाना, ऊर्जा संबंधी मुद्दे, अगर वाहन नियंत्रण से बाहर हो जाए तो ऑटोमैटिक नियंत्रण आदि। वह ऐसा एम्बुलेंस बनाना चाहते हैं जो ऊबड़-खाबड़ और ख़राब सड़कों पर भी दौड़ सके। दावलसाब का विश्वास है कि मेकेनिकल इंजीनियरिंग की शिक्षा ग्रहण करके वह अपने सपनों को साकार कर सकते हैं। वह देश को प्रगति पथ पर अग्रणी देखना चाहते हैं। ❑

आंगनबाड़ी की मदद से प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा

● सुधा कुमारी

आज शिक्षा का स्तर बिहार के हर ज़िले में भिन्न है, लेकिन राज्य सरकार शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए हर संभव प्रयास कर रही है। इस प्रयास से कई ज़िलों में भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिला है। लेकिन कुछ ज़िलों में शिक्षा के क्षेत्र सराहनीय कार्य भी हुए हैं। लोग घरों से निकलकर स्कूल की ओर जा रहे हैं। इस योजना को बढ़ावा देने में आंगनबाड़ी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इसकी शुरुआत 30 साल पहले 2 अक्तूबर, 1975 को की गई। प्रारंभ में 33 ब्लॉक में इसकी नींव रखी थी।

राज्य में कई ऐसे गांव हैं जहां जमीनी स्तर के काम को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। यह एक ऐसे गांव की कहानी है जिसके उत्तर में मधुबनी ज़िले का कई हिस्सा आता है तथा दक्षिण में दरभंगा ज़िला स्थित है। इसकी जनसंख्या मुश्किल से 1,000 से 1,500 है। इस गांव का नाम भतौरा है जो सिंधिया पंचायत में है। राज्य सरकार ने हर गांव में आंगनबाड़ी की व्यवस्था की है। आंगनबाड़ी मुखिया के माध्यम से बनाया जाता है। आंगनबाड़ी का उद्देश्य बच्चों में शिक्षा का प्रचार करना है ताकि हर घर के बच्चे शिक्षित हों। बच्चों में शिक्षा का अभाव न रहे इसके लिए राज्य सरकार हर संभव प्रयास कर रही है।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए कई महत्वाकांक्षी पहल और नयी योजनाएं प्रारंभ की गई हैं। बड़े पैमाने पर शिक्षकों की नियुक्ति पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर निकायों के माध्यम से की गई है, नये स्कूलों की स्वीकृति दी गई है, नये स्कूल भवनों का निर्माण किया गया है। स्कूल जाने वाली बच्चियों को पोशाक और साईकिल के लिए धनराशि दी जा रही है। बालकों के लिए भी पोशाक और साईकिल योजना प्रारंभ की गई है। प्राथमिक विद्यालयों में चारदीवारी निर्माण, खेलकूद के सामानों की व्यवस्था, शौचालय और पेयजल व्यवस्था, अतिरिक्त कमरों का निर्माण और बच्चों के लिए शिक्षण-परिभ्रमण की व्यवस्था मुख्यमंत्री समग्र विद्यालय विकास कार्यक्रम के अंतर्गत की गई है।

गुंजा फरजाना आंगनबाड़ी केंद्र सं. 78 की सेविका हैं और आंगनबाड़ी चलाती हैं। इन्होंने मदरसा अनहरुल ओलूम पैगंबरपुर फोकनिया से मैट्रिक पास किया है। उन्होंने बताया कि आंगनबाड़ी बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए खोली गई है ताकि बच्चों को सही शिक्षा और सही मार्गदर्शन मिल सके। मधुबनी ज़िले के अंतर्गत इस आंगनबाड़ी में फिलहाल 40 बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। उन्हें दोपहर में सरकार की प्रायोजित योजना के द्वारा भोजन दिया जाता है। बच्चों तथा गर्भवती महिला को ध्यान में रखकर ही यह सुविधा दी गई है और इसमें पौष्टिकता का भी ध्यान रखा गया है। लेकिन अभी कुछ समय से सरकार की 'मिड-डे मील' योजना प्राथमिक विद्यालयों में चल रही है और पौष्टिक आहार को बंद कर दिया गया है। गुंजा फरजाना कहती हैं कि यह आंगनबाड़ी 6 सालों से चल रही है। आंगनबाड़ी में 5 साल से ऊपर तक के बच्चे को शिक्षा दी जाती है। आंगनबाड़ी केंद्र से शिक्षा ग्रहण करने के बाद उनका दाखिला प्राथमिक विद्यालय में होता है। प्राथमिक विद्यालय में दाखिला करवाने के लिए उन्हें किसी प्रमाण पत्र की ज़रूरत नहीं होती। सरकार की इस योजना से बच्चों में साक्षरता बढ़ रही है। सरकार ने शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक अनोखा तरीक़ा अपनाया है। आंगनबाड़ी के माध्यम से शिक्षा को बढ़ावा मिल रहा है।

सरकार ने आंगनबाड़ी में 0 से 5 साल तक के बच्चों की जन्म प्रमाणपत्र बनाने की सुविधा भी उपलब्ध कराई है। इस जन्म प्रमात्रपत्र को बनाने के लिए केवल 21 दिनों का समय दिया जाता है। यह ऐसा प्रमाणपत्र है जिसका कभी भी किसी भी स्कूल में दाखिले के समय ज़रूरत पड़ती है। पहले गांव के लोगों को जन्म प्रमाणपत्र बनाने के लिए दरभंगा जाना पड़ता था। उन्हें काफी भाग-दौड़ का सामना करना पड़ता था। लेकिन अब यह जिम्मेदारी गांव में आंगनबाड़ी चलाने वाली सेविका को दे दिया गया है। अब गांव में ही जन्म प्रमाणपत्र बन जाता है जिससे लोगों का काम आसान हो गया है।

गुंजा फरजाना ने बताया की सरकार ने बच्चों के लिए स्लेट, पेंसिल, खिचड़ी इत्यादि की व्यवस्था की है ताकि बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। अगर सरकार उनकी छोटी-छोटी ज़रूरतों की पूर्ति करेंगी तो बच्चे पढ़ाई की ओर आकर्षित होंगे। इससे उनमें शिक्षा के प्रति जागरुकता बढ़ेगी और वे शिक्षा की ओर अग्रसर होंगे।

आज आंगनबाड़ी से लाखों गर्भवती महिलाओं और लगभग 50 लाख बच्चे, जो 6 साल से नीचे के हैं, को इससे जोड़ा गया है। राज्य के लगभग 25 लाख ऐसे बच्चे आंगनबाड़ी की शैक्षिक योजनाओं का लाभ उठा रहे हैं, जिनकी उम्र 3 से 6 वर्ष के बीच है। यह समूह 393 योजनाओं से जुड़ा हुआ है। राज्य की 60,587 आंगनबाड़ियों को स्वास्थ्य, शिक्षा और पौष्टिकता के आधार पर जोड़ा गया है। ❑

(चरखा फीचर्स)

विकेंद्रीकरण व गांधी का ग्राम स्वराज

● कन्हैया त्रिपाठी

भारत में 'ग्राम्य संकल्पना' काफ़ी प्राचीन है। हमारे धर्मग्रंथ और विविध अभिलेख इस तथ्य को उज़ागर करते हैं। भारतीय ग्राम्य व्यवस्था में विकेंद्रीकरण की अवधारणा कब से मानी जाए इस पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फ़िलहाल विकेन्द्रीकरण का मूल 'व्यवस्था के पर्याप्त पहुंच' पर आधारित है। किसी भी प्रकार से कुछ खास वर्ग तक लाभ पहुंचाने के बरक्स इस अवधारणा को मान्यता मिली जिससे बहुलांश के बीच लाभ पहुंच सके तथा मुख्यधारा से हाशिये तक के लोग इस व्यवस्था से लाभान्वित हो सके।

सहस्राब्दि पुरुष महात्मा गांधी को इस अवधारणा के विकास व व्याप्ति के लिए हमेशा स्मरण किया जाएगा। गांधीजी 'सर्वोदय' जैसी अपनी संकल्पना का फ़लक व विस्तार इसी विकेंद्रीकरण के पथ से अग्रसर होकर देखना चाहते हैं। गांधी कहते हैं कि 'अन्टू दिस लास्ट' में रस्किन ने स्पष्ट कर दिया है कि, 'व्यक्ति का श्रेय समष्टि में सन्निहित है।' इसका तात्पर्य हुआ कि किसी भी दशा में व्यक्ति को आत्मनिष्ठ न होकर 'सर्वजन हिताय' की संकल्पना को स्वीकार करना चाहिए। गांधीजी गांव की संरचना इसी प्रकार चाहते थे। वह चाहते थे कि हमारे गांव 'समष्टि' में ही विश्वास करें। वह भारतीय संसाधनों की वितरण प्रणाली संचालन व्यवस्था का सिर्फ़ विकेंद्रीकरण नहीं चाहते थे बल्कि व्यक्ति के भावनात्मक व संवेदनात्मक विकेंद्रीकरण के हिमायती थे। उनका विश्वास था कि व्यक्ति में संवेदनात्मक विकेंद्रीकरण की अवधारणा अगर विकसित हो जाए तो व्यक्ति अपनी किसी भी चीज़ का केंद्रीकरण नहीं चाहेगा। अब प्रश्न यह है कि वह ऐसा क्यों चाहते थे? वस्तुत: गांधीजी की इस अवधारणा का फ़लक बहुत बड़ा था। उनका मानना था कि विकेंद्रीकरण 'नैतिक सत्ता' पर आधारित होगी तो इससे 'जन स्वायत्तता' आएगी। लोक प्रभुत्व कायम होगा। ग्राम पंचायतें स्वयं वैधानिक, न्यायिक प्रणाली, प्रशासनिक प्रणाली विकसित करेगी। लोगों को आर्थिक स्वायत्तता व अपने उत्पाद के मूल्य भी प्राप्त होंगे। गांधी के इस आदर्श प्रणाली का स्वप्न ही 'ग्राम-स्वराज' था। वह इसे 'रामराज्य' की संज्ञा देते हैं। रामराज्य का अभिप्राय था- अपने समष्टि व समुदाय में अनुरागात्मक माहौल। गांधी का विश्वास था कि ऐसे माहौल में लोगों का 'स्व' सुरक्षित रहेगा। लोग स्वतंत्र होंगे और 'गरिमामय' जीवन जी सकेंगे। अपने मन-मुताबिक़ उद्योग का चयन कर सकेंगे और उससे अपने मेहनत से की गई कमाई प्राप्त करके अपना व अपने परिवार की भली प्रकार देखभाल कर सकेंगे।

2 अक्तूबर, गांधी जयंती पर विशेष

स्थानीय चीज़ों का स्थानीय लोगों द्वारा वास्तविक लाभ प्राप्त करने की यह सबसे बड़ी मुहिम थी जो गांधीजी ने आज़ादी से पूर्व अपने समाचार पत्रों– *हरिजन* व *यंग इंडिया* में अभिव्यक्त किए। उन्होंने इस पर *हिंद स्वराज* में भी ज़ोरदार तरीक़े से अपनी बात रखी। वह वास्तव में चाहते थे कि उनके सपनों का भारत बड़े उद्योग, अराजक व साम्राज्यवादी राज्य व्यवस्था और पागल सभ्यता की गिरफ़्त में कभी न आए। क्योंकि इससे हिंसा बढ़ेंगी। अहिंसक अर्थव्यवस्था का किसी भी दशा में विकास नहीं होगा और सत्ता पर क़ाबिज़ कुछ लोगों का एकाधिकार होगा। गांधी की यह सोच भारत के राष्ट्र-राज्य बनने की प्रक्रिया में हम देखें और भूमंडलीकरण के बाद भारतीय परिदृश्य का मूल्यांकन करें तो रोंगटे खड़े हो जाएंगे। भारत में वह सब कुछ हुआ जो गांधी नहीं चाहते थे। या वह थोड़ा जो चाहते थे उसका विभत्स व भयानक रूप भारत में आज़ादी के इतने वर्षों बाद देखने को मिला। गांधी ने अपने अंतिम वसीयतनामे में देश के सात लाख गांवों की जो तस्वीर खींची थी वह धरी-की-धरी रह गई और शहरीकरण ने अपना पांव पसारा। गांधी ने सोचा था कि सत्ता का रुख गांव की ओर से शुरू होगा। लोग अपना रोज़गार गांव में प्राप्त कर लेंगे, लेकिन पर्याप्त विस्थापन गांवों से शहरों की ओर ज़ारी है। रोज़गार की तलाश तथा ग्लैमर को कैद करने के लिए देश में यह विस्थापन हुए। आदिवासी गांवों को शहर बनाने की मुहिम शुरू हुई है और उनकी भी संस्कृति व सभ्यता को नष्ट करने में राज्य सफ़ल है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासी गांवों पर जो धावा किया है उससे भारत का हर बुद्धिजीवी वाकिफ़ है। यह गांधी का सपना कदापि नहीं था और न ही विकेंद्रीकरण। गांधी ने एक बार कहा था, "यदि गांव का प्रलय होता है तो भारत का भी प्रलय होगा।" ऐसे में क्या हम भारतीय प्रलय की ओर अग्रसर हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है। इस प्रश्न का विकल्प यही है कि हम गांधी के ग्राम-स्वराज्य की संकल्पना से जो अपना नाता तोड़ें हैं उसे एक बार फिर से जोड़ें।

राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि के लिए कृतसंकल्प

● देवेंद्र भारद्वाज

एक लंबे अरसे तक भारतीय खेलों में पुरुष खिलाड़ियों का वर्चस्व रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस स्थिति को बदलने के लिए कुछ प्रयास शुरू हुए। उदाहरणार्थ, वर्ष 1952 के हेलसिंकी ओलंपिक खेलों के लिए भारतीय दल में पहली बार दो महिला एथलीटों, मेरी डिसूजा और नीलिमा घोष तथा दो महिला तैराकों डॉली नज़ीर और आरती साहा को शामिल किया गया। यह बात और है कि इनका प्रदर्शन कोई ख़ास नहीं रहा, लेकिन एक नयी शुरुआत हुई। टेबल टेनिस और बैडमिंटन जैसे खेलों में उस ज़माने में भी भारत में कई बेहतरीन महिला खिलाड़ी थीं, भले ही अतीत के धुंधलके में लगभग लुप्त हो जाने के कारण आज की पीढ़ी उनकी उपलब्धियों से परिचित नहीं है। वर्ष 1952 में सिंगापुर में हुई पहली एशियाई टेबल टेनिस प्रतियोगिता में भारत की गुल नासिकवाला ने महिला एकल, महिला युगल और सहयुगल ख़िताब जीतने का अपूर्व गौरव प्राप्त किया था। बैडमिंटन में मुमताज़ लोटवाला ने अंतरराष्ट्रीय टीम प्रतियोगिता ऊबर कप में भारत के लिए शानदार प्रदर्शन किया। उस ज़माने में भारत में टेबल टेनिस और बैडमिंटन में कई श्रेष्ठ महिला खिलाड़ी थीं, जिन्होंने महिलाओं में इन खेलों को लोकप्रिय बनाया।

पी.टी. उषा

एथलेटिक्स को खेलों की रानी कहा जाता है। आमतौर पर एशियाई स्तर पर भारतीय एथलीटों का प्रदर्शन अच्छा रहा है। कमलजीत संधु पहली महिला एथलीट थी जिसने वर्ष 1970 के बैंकाक एशियाई खेलों में 400 मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक अर्जित किया। आठ वर्ष बाद 1978 के बैंकाक एशियाई खेलों में गीता जुत्शी ने 800 मीटर दौड़ में स्वर्ण पदक और 1,500 मीटर दौड़ में रजत पदक जीते। इसके बाद तो एशियाई खेलों में भारतीय महिलाओं की स्वर्णिम सफ़लता का सिलसिला जारी रहा। भारतीय महिला एथलीटों में देश को सबसे ज्यादा गौरवान्वित पी.टी. उषा ने किया। एशियाई खेलों में 4 स्वर्ण और 7 रजत पदक जीतने वाली उड़न परी उषा वर्ष 1984 के लॉस एंजेल्स ओलंपिक खेलों में 400 मीटर बाधा दौड़ में सूक्ष्मतम अंतर से कांस्य पदक जीतने से वंचित रह गई और एशिया की इस महानतम महिला धाविका को चौथे स्थान से संतोष करना पड़ा।

'पेयोली एक्सप्रेस' कहलाने वाली पी.टी. उषा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने अनेक नवोदित महिला एथलीटों और नयी पीढ़ी में आत्मविश्वास और नये जोश का संचार किया और उनके लिए एक आदर्श एवं प्रेरणा स्रोत बनीं। फलस्वरूप ज्योतिर्मयी सिकदर, के.एम. बीनामोल, सुनीता रानी, नीलम जसवंत सिंह, अंजू बॉबी जॉर्ज के रूप में एशियाई स्तर पर स्वर्णिम प्रदर्शन करने वाली महिला एथलिटों की एक लंबी कतार सामने आई। यह सिलसिला अभी थमा नहीं है। अंजू बॉबी जॉर्ज ने तो अगस्त 2003 में पेरिस में संपन्न विश्व एथलेटिक्स प्रतियोगिता में लंबी कूद स्पर्द्धा में कांस्य पदक जीतकर इतिहास रचा। इससे पूर्व कोई भी भारतीय एथलीट यह करिश्मा नहीं दिखा सका था। भारतीय एथलेटिक्स के उत्थान के लिए उषा आज भी प्रयत्नशील हैं और अपने अधूरे स्वप्न को साकार करने के लिए एक अकादमी चला रही हैं ताकि देश को गौरवान्वित करने के लिए चैंपियन एथलीट पैदा किए जा सकें।

एम.सी. मेरीकॉम

निर्धनता, साधनों के अभाव और सामाजिक उपहास से जूझते हुए क्या कोई चैंपियन बन सकता है? इसका उत्तर है मणिपुर की 27 वर्षीया एम.सी. मेरीकॉम जिसने महिला बॉक्सिंग के ज़ोख़िमभरे खेल में एक नहीं, दो नहीं, लगातार पूरे चार बार 46 किलो शरीर भार श्रेणी में और एक बार 48 किलो भार श्रेणी में विश्व चैंपियन बनने का विलक्षण क़रतब दिखाया। मेरीकॉम ने पहली बार वर्ष 2002 में तुर्की में, दूसरी बार वर्ष 2005 में ऑस्ट्रिया में, तीसरी बार वर्ष 2006 में दिल्ली में और चौथी बार वर्ष 2008 में चीन में विश्व चैंपियन बनने का गौरव प्राप्त किया। विवाहित और जुड़वां पुत्रों की माता मेरी कॉम भले ही विलंब से राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार से सम्मानित हुईं, पर चैंपियन बनने की अमिट लालसा उनमें अभी भी विद्यमान है।

निर्यात वृद्धि के लिए रियायतों की बौछार

● वेद प्रकाश अरोड़ा

केंद्र सरकार ने विश्व बाज़ार में लगातार मार झेल रहे भारतीय निर्यात और निर्यातकों की सहायता के लिए 10 अरब 52 करोड़ रुपये की रियायतें देने की घोषणा करते हुए आशा व्यक्त की है कि वर्तमान वित्त वर्ष में 200 अरब डॉलर का निर्यात लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाएगा। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री आनंद शर्मा ने विशेष रूप से सिले-सिलाए कपड़ों तथा दस्तकारी और चमड़ा जैसे श्रम प्रधान क्षेत्रों के लिए रियायतों पर रियायतें देने की झड़ी लगा दी है। उन्होंने वर्ष 2009 से 2014 तक की विदेश व्यापार नीति की वार्षिक समीक्षा करते हुए बताया कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार क्षेत्र में हालात अभी ठीक नहीं हुए हैं, इसलिए निर्यात व्यापारियों की सहायता करने की ज़रूरत है। मंदी के संकट से उबरने के लिए शुल्क पात्रता पासबुक योजना और निर्यात संवर्धन के लिए पूंजीगत वस्तुओं के शुल्क मुक्त आयात की योजनाओं की अवधि बढ़ा दी गई है। इतना ही नहीं निर्यातकों को ब्याज़ सहायता देने की स्कीम में कुछ और क्षेत्र शामिल किए गए हैं।

पिछले कुछ वर्षों के निर्यात व्यापार पर नज़र डालने पर हम कह सकते हैं कि हमारे निर्यात व्यापार की राहें ऊंच-नीच से भरी रही हैं। वे सतत विकास और निरंतर आह्लाद की कहानी को नहीं कहतीं। यह सच्चाई मात्र पिछले दो वर्षों यानी 2007-08 और 2008-09 के निर्यात व्यापार के आंकड़ों पर नज़र डालने से ही स्पष्ट हो जाती है। वर्ष 2008-09 में 185 अरब तीस लाख डॉलर मूल्य की वस्तुओं का निर्यात हुआ, जो 13.6 प्रतिशत की विकास दर का सूचक था। यह दर पिछले वर्ष की 29.1 प्रतिशत की विकास दर से 15.5 प्रतिशत कम थी। कुछ ऐसी ही ऊंच-नीच भरी कहानी, रूलाती या मुस्कान लाती गई, कभी हर महीने, कभी हर तिमाही और कभी साल-दर-साल देखने को मिली।

यहां यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि वर्ष 2009 से 2014 तक की अवधि के लिए विदेश व्यापार नीति की घोषणा 27 अगस्त, 2009 को जिस समय की गई थी, उस समय विश्व पिछले सात दशकों में सबसे विकट आर्थिक चुनौती से जूझता उबरने का प्रयास कर रहा था। विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाएं और बाज़ार ज़बरदस्त संकट के दौर से गुज़र रहे थे। आर्थिक मंदी के इस संकट की वज़ह से, वैश्विक पूंजी निवेश के प्रवाह में कमी से रू-ब-रू होना पड़ रहा था। नतीज़तन एक करोड़ से अधिक लोग बेरोज़गार हो गए। इसका नज़ला विदेश व्यापार पर भी पड़ा। मंदी के बढ़ते प्रकोप से आर्थिक बाज़ारों और व्यापारिक गतिविधियों की चाल दिन-ब-दिन सुस्त होती चली गई। परिणाम यह हुआ कि विश्व व्यापार में 12 प्रतिशत से भी अधिक की रिकॉर्ड गिरावट आ गई।

सवाल यह था कि निर्यात में गिरावट के इस रुझान को कैसे बदला जाए, कैसे निर्यात में गतिशीलता लाई जाए, और कैसे बेरोज़गारी की बढ़ती विभीषिका से दो-दो हाथ हुआ जाए। लिहाज़ा, विदेश व्यापार और रोज़गार को बढ़ावा देने के लिए बहुआयामी कार्यनीति अपनाई गई, अफ्रीकी, लैटिन अमरीका और एशिया के नये-नये बाज़ारों में पैठ बनाने और बढ़ाने की रणनीति अपनाई गई, व्यापारिक सौदों की लागत में कमी के लिए कार्यविधियों और प्रक्रियाओं को सादा, सरल और सक्षम बनाया गया। निर्यात सामग्री के प्रौद्योगिकी उन्नयन के लिए क़दम उठाए गए और निर्यात-शुल्क में यथोचित कमी लाई गई या फिर प्रोत्साहन पैकेज़ों के रूप में तरह-तरह की रियायतें दी गईं।

वर्ष 2008-09 में अमरीका और यूरोप में पसरती मंदी से और वहां के परंपरागत बाज़ारों में भारत के सामान की बिक्री में कमी से निर्यात की विकास दर में गिरावट ज़रूर आई। लेकिन इस आरंभिक आघात के बावजूद हमारा निर्यात व्यापार फिर से रफ़्तार पकड़ने लगा है। अगर 2004-05 से 2008-09 तक के चार वर्षों की बात करें तो इस अवधि में औसतन वार्षिक विकास दर 23.9 प्रतिशत दर्ज़ की गई, जबकि इसके पूर्ववर्ती पांच वर्षों में निर्यात की औसत विकास दर कम यानी 14.3 प्रतिशत वार्षिक रही। विश्व व्यापार संगठन के वर्ष 2009 के आंकड़े इसकी पुष्टि करते हैं। इसके अनुसार विश्व के वस्तु निर्यात व्यापार में भारत की भागीदारी वर्ष 2004 की 0.8 प्रतिशत की तुलना में बढ़कर वर्ष 2008 में 1.1 प्रतिशत हो गई। प्रमुख निर्यातक देशों की सूची में भारत का स्थान तीन पायदान ऊपर हो गया। वर्ष 2004 में उसका स्थान काफी नीचे यानी 30वां था जो 2008 में तीन बढ़कर 27वां हो गया। लेकिन अगर वर्ष-दर-वर्ष व्यापार की बात करें, तो कह सकते हैं कि अक्तूबर 2008 से जो निर्यात धीरे-धीरे कम होता जा रहा था, वह अक्तूबर 2009 से बढ़ने लगा और पिछले वर्ष के अंत में भारत का निर्यात 178 अरब 66 करोड़ डॉलर का हो गया। वर्ष 2010-11 की पहली तिमाही में पिछले वर्ष की तुलना में निर्यात में 32 प्रतिशत वृद्धि हुई।

हमारी अर्थव्यवस्था की बुनियादें मज़बूत होने के बावजूद प्रतिकूल वैश्विक गतिविधियों ने इन्हें झकझोर कर रख दिया। इससे हमारी विकास दर घटकर 6.7 प्रतिशत रह गई। निर्यात पर और खासकर श्रमपरक निर्यातों को अधिक ठेस पहुंची। निर्यात के हमारे कई परंपरागत बाज़ारों की चूलें हिल गई। निर्यात जो अप्रैल से सितंबर 2008 तक की अवधि में 48.1 प्रतिशत बढ़ रहा था, वह अक्तूबर 2008 से गिरना शुरू हुआ और यह गिरावट 2009-2010 की पहली छमाही तक जारी रही।

कौशल विकास का मेरुदंड

● सरोज कुमार शुक्ल

शिक्षा न केवल एक महत्वपूर्ण मानव अधिकार है बल्कि अन्य मानव अधिकारों को उपलब्ध कराने वाला एक कारगर उपाय भी है। इसी को ध्यान में रखकर मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र के निर्माताओं ने शिक्षा को मूल अधिकार का दर्ज़ा दिया था। बाद के अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज़ों में भी शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार पर ज़ोर दिया गया। बावजूद इसके शैक्षिक विस्तार की दृष्टि से हमारे प्रयास अभी भी अपर्याप्त हैं। मानव विकास रिपोर्ट के क्रम में भारत का स्थान बहुत पीछे है। वर्ष 2001 में हुई जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि भारत में 65 प्रतिशत साक्षरता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 41,45 तथा 46 में शिक्षा को राज्य के नीति निदेशक तत्वों में सम्मिलित किया गया। इसका मुख्य आशय यह था कि यह राज्य की जिम्मेदारी है कि वह संविधान लागू होने के बाद एक दशक की अवधि में शिक्षा के लिए अपेक्षित माहौल तैयार करे। इसमें 6 से 14 वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिए शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य बनाने की व्यवस्था की गई। वर्ष 2002 में एक संशोधन लाकर इस आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिया गया। साथ ही, अनुच्छेद 45 में राज्यों पर यह भार डाला गया कि 6 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों के लिए सुरक्षित बचपन और शिक्षा का प्रबंध किया जाए। उल्लेखनीय है कि न्यायपालिका ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 जोकि प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार से जुड़ा है उसमें शिक्षा के अधिकार का समावेश माना है। कई मुक़दमों में उच्च न्यायालय द्वारा शिक्षा के अधिकार रेखांकित करने के फलस्वरूप समाज में जागरुकता बढ़ी और वर्ष 2002 में 86वां संविधान संशोधन लाया गया। इसके अंतर्गत अनुच्छेद 21क को जोड़ा गया और मूल कर्तव्यों की शृंखला में सम्मिलित किया गया। परंतु यह एक निदेशात्मक प्रावधान था।

भारत सरकार ने शिक्षा के अधिकार के संबंध में एक नया कानून बनाया है जो इस वर्ष से लागू हो गया है। इस कानून में छह से चौदह वर्ष के बीच की आयु के बच्चों को अपने पास-पड़ोस के विद्यालय में शिक्षा पाने का अधिकार प्रदान किया गया है। यह राज्य का दायित्व होगा। इसके द्वारा विद्यालयों, अध्यापकों तथा पाठ्यक्रम हेतु मानक स्थापित होंगे। निजी विद्यालयों के मालिकों पर भी इन सुविधाओं को बांटने का दबाव होगा। राज्यों के लिए भी इस कानून को स्वीकार करना आवश्यक होगा। अध्यापकों की नियुक्ति मानक के अनुसार छात्रों के अनुपात में करनी होगी। वस्तुत: बच्चों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा अधिनियम का प्रावधान संविधान के 86वें संशोधन (धारा 12ए) की देन है।

यह शिक्षा के लिए राज्य की जिम्मेदारी को तय करता है। वर्तमान आंकड़ों के अनुसार लगभग 93 प्रतिशत बच्चे सरकारी विद्यालयों में हैं और निजी विद्यालयों में केवल 7 प्रतिशत हैं, हालांकि निजी क्षेत्र की उपस्थिति स्कूली शिक्षा में बड़े ज़ोर-शोर से है।

सामाजिक न्याय और अवसरों की समानता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा का प्रचार-प्रसार सबके लिए आवश्यक है। जीवन में हर पल, हर क्षण हमारे सामर्थ्य की परीक्षा होती रहती है। यह सामर्थ्य शिक्षा के अभाव में सोची भी नहीं जा सकती है। आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक गतिशीलता, आत्मसम्मान और संतुष्टि के अवसर सभी ज्ञान और शिक्षा से ही संभव हो पाते हैं।

आज आवश्यकता है इस चुनौती को स्वीकार करने की कि शिक्षा सभ्यता के विकास इतिहास में एक ऊंची छलांग है। शिक्षा के विस्तार को लेकर हमारी परिकल्पना रही है कि इसके सहारे गैर बराबरी, भेदभाव और पूर्वाग्रह से मुक्त एक कल्याणकारी भारतीय समाज की कल्पना साकार हो सकेगी। खासतौर पर स्त्री, वंचितों और पिछड़ों की शिक्षा को वरीयता देनी होगी और इसके लिए आवश्यक संसाधनों को जुटाना होगा। ऐसा करना अनिवार्य है, क्योंकि शिक्षा के परिणाम केवल वर्तमान ही नहीं भविष्य के लिए भी प्रासंगिक होते हैं। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन और सर्वशिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रमों से जिस प्रक्रिया का आरंभ हुआ उससे आशा बंधी है और वह अब आकार ले रही है। देश के बजट का छह प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करने की बात बहुत दिनों से चल रही थी पर इस पर कार्यरूप में अमल नहीं हो पा रहा था। ग्यारहवीं योजना में इस तरफ ध्यान दिया गया है और शिक्षा पर व्यय करने हेतु सेस लगाकर संसाधन जुटाए गए। हमें विश्वास है कि निकट भविष्य में शिक्षा की बेहतरी के लिए संसाधनों की कमी नहीं होगी। आज आवश्यकता है कि शासन और समाज दोनों मिलकर शिक्षा के अधिकार को सामाजिक सशक्तीकरण का माध्यम बनाएं।

शिक्षा वस्तुत: मनुष्य को उन्मुक्त करती है। विभिन्न प्रकार की सीमाओं और बंधनों को काटकर संभावनाओं के द्वार खोलती है। इस बात की अनुभूति प्राचीन काल से ही रही है। इसे कई तरीक़े से कहा गया है और सामान्य जीवन तथा आध्यात्मिक उन्नति दोनों के लिए इसके महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

शिक्षा आज बहुआयामी हो गई है। कला, विज्ञान तथा प्राविधिक या तकनीकी क्षेत्र में विकास के साथ कानून, प्रबंधन तथा कौशल के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट शिक्षा के अनेकानेक केंद्र विकसित हुए हैं।

1857 की क्रांति के प्रत्यक्षदर्शी

● अंशु गुप्ता

भारतीय साहित्य और संस्कृति के कीर्तिमानों में मिर्ज़ा ग़ालिब ने ऐसी जगह बना ली है जिसके बिना भारत के मिज़ाज़ की पैमाइश अधूरी ही रहती है। उनका भारतीय क्षितिज पर पदार्पण ऐसे समय में हुआ जब अंग्रेज़ी उपनिवेश के रूप में भारत की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पहचान बदल रही थी। मुग़ल शासन की सांध्यवेला में ग़ालिब जैसे महान शायर की उपस्थिति विरोधाभास जैसी लगती है। ग़ालिब गवाह बने 1857 की क्रांति और उसके परिणाम के। ग़ालिब की इस शख्सियत को हम सबके सामने रखने का नायाब काम किया है पवन कुमार वर्मा ने, जिनकी साहित्यिक-सांस्कृतिक रुचि किसी परिचय की मोहताज़ नहीं है। साहित्य, इतिहास और अपने देशकाल को समझने की गहरी दृष्टि रखने वाले पवन कुमार वर्मा की अनेक कृतियां प्रशंसित हो चुकी हैं और वे आज के भारत के एक प्रमुख स्वर के रूप में प्रतिष्ठित हैं। *ग़ालिब और उनका युग* श्री वर्मा की बौद्धिक-सामाजिक यात्रा का नया पड़ाव है जो हमें उनके अनुसंधान, साहित्य प्रेम, सांस्कृतिक संवेदना तथा इतिहास बोध से परिचित कराता है। इस रचना को सामने लाकर वर्मा जी ने ग़ालिब और उनके समय को ही नहीं उकेरा है बल्कि भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को समग्र रूप में देखने का एक नज़रिया भी दिया है। हम सब उनके प्रति आभारी हैं।

पांच अध्यायों में बुने गए ग़ालिब के इस सफ़रनामे में हमें ग़ालिब के बहाने इतिहास की गलियों में गुज़रने का अवसर मिलता है। पहला अध्याय मुग़ल सल्तनत के ख़ात्मे की हक़ीक़त बयां करता है। कानूनी महत्व के बावजूद मुग़ल शासन का आखिरी चरण वास्तविकता में निरुपाय और निष्प्रभावी था। ग़ालिब जागीरदार या सामंती पृष्ठभूमि के थे और मुग़ल शासन से प्रतिबद्ध थे। बड़ी तेज़ी से मुग़लों का वैभव ख़त्म हो रहा था और कुलीन सामंत वर्ग भी अपनी हैसियत खो रहा था। ग़ालिब को कठिन परिस्थितियों में जीना पड़ा। गुज़ारे के लिए अंग्रेज अधिकारियों के पास आवेदन किया, मुक़दमा लड़े पर हार गए। अपनी पेंशन या गुज़ारे के लिए तीस साल तक वे अंग्रेज़ों से अनुरोध करते रहे पर कुछ भी न हुआ। मुग़ल साम्राज्य का ख़ात्मा हुआ, बहादुरशाह ज़फ़र को निर्वासन मिला और उथल-पुथल से भरी ज़िंदगी जीते ग़ालिब ने एक चुनौतीभरे माहौल में साहित्य सृजन किया।

बहादुरशाह ज़फ़र सत्ता में अशक्त ज़रूर थे पर सांस्कृतिक रुचि से संपन्न थे। पुस्तक के 'खुशहालशहर' शीर्षक दूसरे अध्याय में दिल्ली के गंगा-जमनी तहज़ीब का विस्तार से जिक्र किया गया है, और यह दिखाया गया है कि भारतीय समाज में विविधता तो थी पर आपसी समझदारी भी थी। ज्यादातर लोग अपने-अपने मज़हब के लोगों के रस्मों-रिवाज़ को आदर देते थे और एक-दूसरे के ग़म और खुशी में शामिल होते थे। खुद ग़ालिब भी एक धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति थे और मनुष्य की आधारभूत श्रेष्ठता में भरोसा रखते थे। उस समय शिक्षा, संस्कृति तथा धर्म की विभिन्न धाराएं बह रही थीं। ज़ौक के इंतकाल के बाद ग़ालिब को बादशाह का उस्ताद नियुक्त किया गया। इसमें सांस्कृतिक-सामाजिक रुचियों, रंगतों और शौकों के विस्तार से वर्णन के साथ-साथ यह भी दर्शाया गया है कि संस्कृति, साहित्य और कला के सरोकार किस तरह सिमटते गए और क्रमशः कुलीन वर्ग तक ही सीमित रह गए। राजनीति के उतार-चढ़ाव का प्रभाव सामाजिक संस्थाओं एवं परंपराओं पर पड़ा और 1857 के बाद सामाजिक ढांचा चरमरा गया।

ग़ालिब प्रतिभावान थे। नौ साल की उम्र में उन्होंने फ़ारसी में शायरी शुरू की। उर्दू में भी लिखना शुरू किया। ग़ालिब की शायरी साहित्य-संसार में आलोचना और विवाद का केंद्र रही। वे स्नेही तो थे पर उनमें घमंड भी था। शायद परिस्थितियों की मार ने उनके व्यक्तित्व को रूखा बना दिया और एक हद तक अटपटा भी। शराब, साक़ी और मयख़ाना उनकी शायरी के खास प्रतीक हैं। उनका सूफ़ियाना रुझान भी रचनाओं में झलकता है और उनके व्यापक दृष्टिकोण को बताता है। वैसे उनकी ज़िंदगी में ग़रीबी, कर्ज़ और आलोचना हमेशा बने रहे। जैसे इस प्रसिद्ध शेर में मिर्ज़ा ग़ालिब कहते हैं :

कर्ज़ की पीते थे मय और समझते थे कि हां।
रंग लाएगी हमारी फाका मस्ती एक दिन।।

ग़ालिब एक व्यापक दार्शनिक बोध के महान कवि थे। व्यापक ईश्वर या ब्रह्म की भावना उनमें रची-बसी थी। तभी तो वे कहते हैं :

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया खुद को होने ने, न मैं होता तो क्या होता।।

जुआ खेलते हुए पकड़े जाने पर उनको सज़ा हुई। वे तीन महीने क़ैद में रहे। क़ैद से लौटने पर गहरी पीड़ा और वेदना से ग्रस्त मिर्ज़ा ग़ालिब बड़े आहत थे तथा आर्थिक तंगी से पस्त और परेशान। 1857 में उनकी पेंशन बंद हो गई। रामपुर के नवाब ने मदद की और इज़्ज़त दी। 1860 में उनकी पेंशन बहाल हुई। 1863 में उनके सम्मान को अंग्रेज़ शासक ने बहाल किया। ग़ालिब को उपाधियों, पदवियों से खुशी मिलती थी। 1867 में वह बुरी तरह बीमार पड़े, अशक्त हो गए। उनकी आलोचना भी खूब हुई। उन्होंने वर्ष 1867 में मानहानि का मुक़दमा किया जिसे 1868 में वापस ले लिया। बूढ़े, बीमार और कर्ज़ में डूबे ग़ालिब बेबस हो चले थे। सन् 1869 में उनका देहावसान हो गया।

वर्मा जी ने ग़ालिब के सर्जनात्मक जीवन के संघर्षों, समकालीन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों तथा राजनीतिक घटनाक्रम को समझने और प्रस्तुत करने का एक रचनात्मक कार्य किया है। ग़ालिब को समझने और उसी बहाने उनके समय को जानने का यह प्रयास पाठकों को ज़रूर पसंद आएगा। प्रतिभा कालातीत कही जाती है। ग़ालिब अपने समय में जीते हुए भी उससे पार जाते हैं, वे कालातीत हैं। ग़ालिब का अंदाज़े-बयां ग़ालिब का ही हो सकता था। भारतीय रचनाशीलता जिस संघर्ष और साहस को स्थापित करती है उसका एक विशिष्ट हस्ताक्षर है– मिर्ज़ा ग़ालिब का काव्य। उस काव्य की रचनात्मक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करती पवन कुमार की कृति शोध के साथ एक साहित्यिक दृष्टि को भी प्रस्तुत करती है। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। ❑

पुस्तक का नाम : ग़ालिब और उनका युग; **लेखक :** पवन कुमार वर्मा; **अंग्रेज़ी से अनुवाद :** निशात ज़ैदी; **प्रकाशक :** साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

Licenced under U (DN)-53/09-11
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 सितंबर, 2010 को प्रकाशित • 29-30 सितंबर, 2010 को डाक द्वारा जारी

क्या आप

बैंक प्रोबेशनरी ऑफीसर्स परीक्षा

पिछले वर्ष का हल प्रश्न-पत्र सहित

Code 2034
मूल्य : 240/-

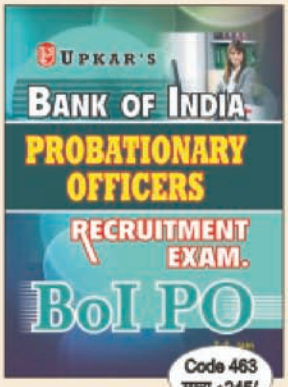

Code 463
मूल्य : 245/-

में सम्मिलित हो रहे हैं, तो पढ़िए...

योग्य एवं अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकें जो आपको महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी विषय-वस्तु उपलब्ध कराने के साथ-साथ परीक्षा में आपका उचित मार्गदर्शन भी करेंगी.

उपकार की पुस्तकें

Code 1168
मूल्य : 270/-

Code 1152
मूल्य : 285/-

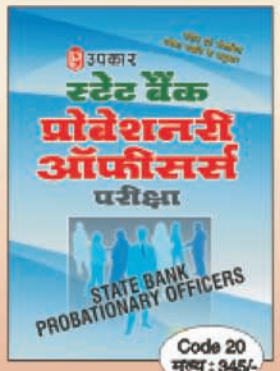

Code 20
मूल्य : 345/-

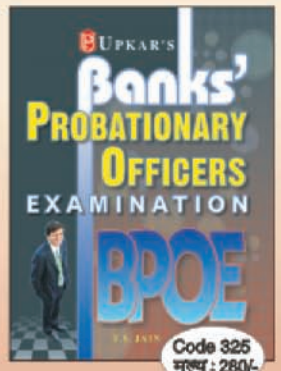

Code 325
मूल्य : 260/-

Code 671
मूल्य : 170/-

Code 1383
मूल्य : 85/-

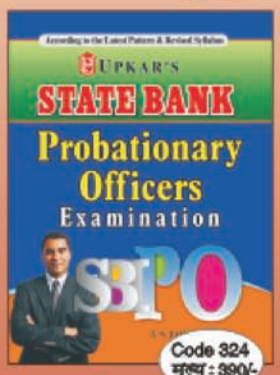

Code 324
मूल्य : 390/-

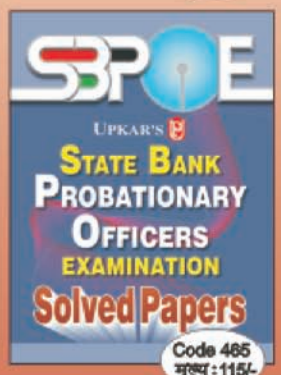

Code 465
मूल्य : 115/-

उपकार प्रकाशन
E-mail : publisher@upkar.in
Website : www.upkar.in

2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – 282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
ब्रांच आफिस : • 4845, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 फोन : 23251844/66
• 1-8-1/B, आर. आर. कॉम्प्लेक्स (सुन्दरैया पार्क के पास, मनसा एन्क्लेव गेट के बगल में), बाग लिंगमपल्ली, हैदराबाद-44 फोन : 66753330

YH-10/10/1